3454

वितस्ता

सम्पादिका
डॉ॰ ज़ौहरा अफ़ज़ल

हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्व विद्यालय
श्रीनगर - १६०००६

1999-2000

3454

वितस्ता

शोध - संचयिका

१९९९ - २०००

हिन्दी विभाग, कश्मीर विश्व विद्यालय

श्रीनगर - १६०००६

कश्मीर विश्व विद्यालय की हिन्दी शोध–पत्रिका

सम्पादिका : डॉ॰ (श्रीमती) ज़ौहरा अफ़ज़ल
रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग

सम्पादक मंडल– डॉ॰ (श्रीमती) ऊषा व्यास
डॉ॰ (श्रीमती) दिलशाद जीलानी
श्रीमती ज़ाहिदा जबीन
श्रीमती रुबी जुत्शी
मुश्ताक अहमद – अनुसन्धित्सु हिन्दी विभाग
कश्मीर वि॰ विद्यालय

मूल्य : 200/-रु॰

कमप्यूट्राईज़ेशन – टी॰ डी॰ टी॰ कमप्यूटर्ज़,
श्रीनगर

मुद्रक – क्राउन प्रिंटिंग प्रेस
श्रीनगर , फोन–451249

क्रम

1.	डॉ॰ नीलम सराफ	कश्मीर में 'नरमेघ' कब तक– एक साहित्यिक दृश्यानलोकन
2.	डॉ॰ मित्रेश कुमार गुप्त	राजभाषा हिन्दी
3.	श्री प्रभु एम	आन्ध्र के नाटककार –गुरजाडा अप्पाराव
4.	डॉ॰ ज़ोहेरा अफ़ज़ल	जम्मू कश्मीर प्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता
5.	डॉ॰ रणजीत	समकालीन हिन्दी कविता में बाबरी मस्जिद के विध्वंस का प्रतिफलन
6.	श्रीमती ज़ाहिदा जबीन	देवनागरी लिपि में त्रुटियाँ एवं सुझाव
7.	श्रीमती रुबी जुत्शी	हिन्दी कहानी में श्रीमती मन्नू भण्डारी की भूमिका
8.	श्री मुश्ताक अहमद	निराला के काव्य में राष्ट्रीयता

नोटः प्रस्तुत पत्रिका में प्रकाशित सामग्री से सम्पादक मण्डल का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

पाठकों से दो बातें

जाती सहस्त्राब्दि को विदाई तथा आने वाली सहस्त्राब्दि का स्वागत करते हुए विभागीय पत्रिका 'वितस्ता' का नया अंक हम आपके सम्मुख रख रहे हैं, इस आशा के साथ कि हमारा यह अंक भी आपको अच्छा लगेगा।

नई शती में हमारा विश्वविद्यालय भी जा रहा है तथा हमारा विभाग जो इस वि॰ वि॰ का सबसे प्राचीनतम विभाग है, इस आशा के साथ नई शती में प्रवेश कर रहा है कि वह और अधिक उन्नति करेगा।

पिछली शती के अन्तिम वर्ष सम्पूर्ण घाटी के लिए अच्छे नहीं रहे। हमारे विभाग को भी कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ा। गत दस वर्षों में छात्रों की संख्या बहुत कम रह गई। किन्तु हम आशा तथा साहस के साथ इस प्रयत्न में लगे रहे कि हमारा विभाग किसी अन्य विभाग से पीछे न रहे तथा हम अपने इस प्रयत्न में किसी सीमा तक सफल भी रहे। पिछले दस वर्षों में यहाँ शौक्षिक तथा अनुसंधान कार्य अनवरत रूप से चलता रहा और इन सबमें हमें विश्व विद्यालय के प्रशासन की ओर से पूरा सहयोग मिला। पर दुर्भाग्य की बात है कि कॉलेजों तथा स्कूलों में हिन्दी शिक्षकों की संख्या ना के बराबर है। इसी कारण विद्यार्थियों की संख्या भी धीरे धीरे घटती जा रही है। आशा है कि इस नई सहस्त्रब्दि में हमारी सरकार इस ओर विशेष ध्यान देगी।

कुछ महीनों पूर्व ही मुझे लन्दन में विश्व हिन्दी सम्मेलन में भाग लेने का अवसर मिला, हिन्दी की उड़ान भारत से लन्दन तक देख कर तथा हिन्दी के प्रति लोगों की

रूचि तथा प्रेम देख कर लगा कि यह भाषा राष्ट्रीयता के सारे बाँध तोड़ कर अर्न्तराष्ट्रीयता में प्रवेश कर रही है। ऐसा प्रतीत होता था मानो हिन्दी प्रेमियों का एक समुन्द्र लन्दन में उमड़ आया हो। हिन्दी अपनी शक्ति तथा उदारता से ही विश्व में अपनी एक अलग पहचान बना रही है। इसने अपने क्षेत्र को सीमित नहीं रखा है। जिस प्रकार समुन्द्र बड़ी उमंग से नदियों को गले लगाता है वैसे ही हिन्दी भी सब को निस्संकोच अपनाती है। इसका घेरा दिन प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है।

भाषा किसी विशिष्ट वर्ग की बपौती नहीं। यह सन्देह कि कोई भाषा किसी विशेष वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है, भाषा के साथ अन्याय है। यह सन्देह भी लोगों के मन से समाप्त करना होगा कि राष्ट्र भाषा के रहते प्रान्तीय भाषा का विकास रूक जायेगा जो व्यक्ति जितनी अधिक भाषाऐं जानता है, विश्व में उसे उतना ही अधिक सम्मान मिलता है। हिन्दी पढ़ने वालों के लिए राज्य में तथा राज्य से बाहर नौकरी के अनेक अच्छे अवसर उपलब्ध हैं।

हमने इस बार कोशिश की है कि इस अंक में घाटी से बाहर के लोगों के लेख भी सम्मिलित किए जाऐं। अपने इस प्रयास में हमें सफलता भी मिली है। जिन लेखकों के लेख हमें समय पर मिल गए, उन्हें हम इस पत्रिका में प्रकाशित कर रहे हैं। सम्भवतः इसमें कुछ त्रुटियाँ भी हों। आशा है पाठक गण हमें उन त्रुटियों से अवगत करा कर हमारा मार्ग दर्शन करेंगें। जिन महानुभवों ने हमारी पिछली पत्रिका की प्रशन्सा करके हमें प्रोत्साहित किया, हमारा सम्पादकीय मण्डल उन के प्रति अपना आभार प्रकट करता है।

प्रस्तुत पत्रिका को वित्तीय अभाव के कारण इस

वर्ष प्रकाशित करना सम्भव न होता, यदि हमारे कुलपति महोदय प्रो॰ मुहम्मद यासीन कादरी तथा कुलसचिव प्रो॰ ए॰ एम॰ मत्तू का विशेष सहयोग न मिला होता। इसके लिए हमारा विभाग इनका आभारी है।

आपके सुझावों का स्वागत है।

सम्पादिका

"कश्मीर में 'नरमेघ' कब तक – एक साहित्यिक दृश्यावनलोकन"

डॉ॰ नीलम सराफ
प्राफेसर, हिन्दी विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय ।

शब्दकोश के अनुसार 'नरमेघ' एक ऐसा वीभत्स यज्ञ है जिसमें मिथकीय मान्यता के अनुसार मांस की आहुति दी जाती थी या मनुष्य की बलि चढ़ाई जाती थी। 'नरमेघ' उपन्यास में आतंकवाद के इस यज्ञ का कुण्ड कश्मीर है। जिसमें नित प्रतिदिन कितने निरीह प्राणियों की आहुति दी जाती है। मस्जिदों पर लगे लाउड़स्पीकरों से घोषणा की जाती थी । "कश्मीर कश्मीरी मुस्लमानों का वतन है, काफिर कल तक अपने कब्जों को खाली कर दें। इसका मूल कारण यह था कि घोषणा करने वालों को उनके विदेशी आकाओं ने उन्हें विश्वास जो दिलाया था कि "काफिरों के जाने के बाद उनके ज़र –ज़न –ज़मीन पर बिरादरान–ए–मिल्लत का हक होगा।" कश्मीर की वर्तमान स्थिति को देखते हुए मनमोहन सहगल इतिहास की कड़ियाँ खोलते हैं और इस आतंकवाद को औरंगजेब के समय की ही एक कड़ी मान कहते है "धर्मनिरपेक्षता के इस राज्य में सत्रहवीं शताब्दी में औंरंगजेब के प्रबन्धकों ने विषबीज बोए थें जिनकी फसल बढ़ने से पहले ही गुरू तेगबहादुर के बलिदान से मारी गई थी–अद्यतन युग में आकर वे ही बीज पवित्र, पुष्पित और फलित होने लगे हैं। औरंगजेब की नई सन्तानों और धर्म निरपेक्षता के लवादों में छिपे संकीर्ण कठोर मजहबियों की कृपा से" (पृष्ठ 84)। मेघदूत में कालिदास ने घाटी को "बादलों का घर" कहा तो

अन्य किसी ने इसे "धरती पर स्वर्ग कहा" परन्तु वर्तमान परिदुश्य को देखते लेखक का जागरूक मानस इन विशेषणों को स्वीकार नहीं कर पाता क्योंकि "यदि स्वर्ग ऐसा होता है तो नरक क्या होगा " पृ॰ : 131

उपन्यास में कश्मीर घाटी की त्रासदी मुख्यता अमानवीय क्रूरताओं को झेलने के बाद वहां से खदेड दिए जाने वाले और पुनः स्थापित होने के लिये संघर्षरत हिन्दुओं के कोण से ही उजागर हुई है। चण्डीगढ़, इस्लामाबाद, श्रीनगर और दिल्ली नामक चार अध्यायों में विभाजित उपन्यास में कश्मीर के हिन्दुओं पर होने वाले अत्याचारों के दृश्यों, विभिन्न सम्प्रदायों में पनपते मतभेदों एवं समस्या के समाधान में सरकार की भूमिका को लेखक ने संजीवता से अंकित किया है। प्रथम अध्याय में त्रासदी की मुख्य परिस्थितियों का विश्लेषण किया गया है। कथा का केन्द्रीय पात्र नरेन्द्र सम्बन्धों में उपजे अजनबीपन से क्षुब्ध है। साथ–साथ उठने बैठने वाले मुस्लमान लड़के मुहल्ले की लड़कियों पर फब्तियां कसते हैं। तो नरेन्द्र सोचता है "नजीब .....मेरा उससे उठना बैठना था। नजीब की बेरूखी याद आती है तो मनुष्यता विमुख होती प्रतीत होती है"। इस अध्याय में चण्डीगढ के शिविर कैम्प में रह रहे नरेन्द्र और उसके चाचा के माध्यम से कश्मीर में आगजनी की घटनाओं बलात्कार की शिकार नारी की व्यथा एवं अत्याचारियों की गोली के शिकार जनों की करुण गाथा का व्यौरा मिलता है। लेखक इस नृशंस अत्याचार का कारण महाराजा हरीसिंह की हठधर्मी और 370 धारा को पारित करवाने में उसकी भूमिका और पंडित नेहरू की भुमिका को माना है। शंश और नरेन्द्र को वास्तविक स्थिति समझाते हुए नरेन्द के चाचा का कहना है "कश्मीर का दुर्भाग्य उस

कश्मीरी नेता के ही हाथों लिखा जाना था। इस प्रदेश के लिए विशेषाधिकार की एक धारा (धारा 370)। उन्होनें जुड़वां दी। भारतीय संविधान में जुड़ी यह धारा जिसके अन्तर्गत नेहरू जी कश्मीर की व्यवस्था कर गए आज इसके कफन की कील बनी हुई है "। यहां लेखक की अवधारणा अटपटी सी लगती है। छोटा बसु जैसे लेखक इस मुददे पर विचार कर उन विद्वानों पर खेद व्यक्त करते हैं जो दफा डा॰ को आतंकवाद का मुल कारण मानते हैं। उनके अनुसार किन्हीं विशेष ऐतिहासिक परिस्थितियों में इसे लागू किया गया था इसे तोड़ने से देशद्रोही शक्तियों को बल मिलेगा। यदि कश्मीर के विषय में सहगल का मत मान लिया जाये तो इस प्रश्न का उत्तर भी ढूढंता होगा भागों में यथा पंजाब और असम आदि में पनप रहे उग्रवाद के लिये कौन सी धारा जिम्मेदार है। यह विषय विवाद का नहीं कयोंकि उपन्यास का मुख्य लक्ष्य तो पाकिरतानी षड़यन्त्रों के परिणामस्वरूप हिन्दुओं के लूट पाट, हिंसा, आगजनी और बलात्कार जैसी घटनाओं से त्रस्त होकर विस्थापित लोगों की पीड़ा का चित्रण रहा है। केन्द्रीय पात्र नरेन्द्र के माध्यम से युवा वर्ग की समस्याओं का विवेचन भी किया है कि किस तरह पढा–लिखा मेघावी नरेन्द्र प्रूफ रीडर का काम पाता हैं।

Sadey the advocates of abrogation of Article 370 forget the historical compulsions which brought into being this provision. A revocation would invite disaster and lend an impetus to the anti national forces which demand an unconditional plebiscite and worse, independence for Kashmir.

Edited by:

Asghar Ali Engineer: Secular Crown.

कश्मीर के विकृत सौन्दर्य का विवेचन करते हुये लेखक बलात्कार की शिकार दो युवतियों प्रवीण {हिन्दू} और अजहर {मुस्लिम} की त्रासदी का चित्रण करते हुए रूबिया के अपहरण का प्रसंग उठाता है। यह प्रसंग देश के पतन में सत्ताधारियों के व्यक्तिगत स्वार्थ की भूमिका को स्पष्ट करता है। राजनीतिज्ञों के स्वार्थ का विवेचन लेखक इस प्रकार करता है "एक लड़की के प्राण बचाने के लिये ऐसे पांच हत्यारों को खुला छोड़ने का निर्णय लिया गया, जो आने वाले कल में भारत का कश्मीर की सैकड़ों बेटियों के अपमान और हत्या का कारण बनने वाले थे। नरेन्द्र जैसे आम व्यक्ति की बहन की जब आतंकवादियों द्वारा मृत्यु हो जाती है तो वह यही सोचकर रह जाता है "मेरी बहन क्या रूबिया नहीं थी।" इस परिदृश्य में तत्कालीन गृहमन्त्री मुफती मुहम्मद सैयद की पुत्री रूबिया के अपहरण की घटना का उचित हल तलाश कर सकने में सरकार की असफलता पर की गई चोट तो सही है किन्तु लेखक का यह सुझाव "यदि रूबिया को छुड़वाने की बजाय सरकार यह घोषणा कर देती कि आतंकवादियों के चुंगल से जब तक रुबिया घर नहीं पहुंचती, तब तक उक्त पांच आतंकवादियों में से प्रतिदिन एक को चौराहे पर गोली मार दी जायेगी "। तब होता बराबर का सौदा। अटपटा सा प्रतीत होता है। इस्लामाबाद शीर्षक अध्याय में कबाचलियों के आक्रमण से लेकर वर्तमान आतंकवादी गतिविधियों के लिये शिक्षण प्रशिक्षण के केन्द्रों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। राजनीतिज्ञों के साथ शरारती तत्व यही आहवान करते है। मजहब खतरे में है, ईरान खतरे में है। उपन्यास में मुहम्मद खां के नेतृत्व में एक प्रशिक्षण केन्द्र खोला गया जिसका कार्य था कश्मीरी मुस्लिम युवकों की तलाश और उनका शिकार।

हबाकदल का असलम ऐसे युवकों में से एक है जो सीमा पार से पाकिस्तान में हथियार और हथियारों का प्रशिक्षण लेने आये थे। लेखक स्थिति का सही और जीवन्त चित्रण करता है कि अनेक प्रकार के प्रलोभनों से ऐसे युवकों को गुमराह कर पाकिस्तान में लाया जाता है। परन्तु उनके साथ दासों से भी बुरा व्यवहार किया जाता है। लेखक के शब्दों में "जरूरत पड़ने पर बैलों के स्थान पर ऐसे युवकों को हल भी खींचना पड़ता था। मैदान हमवार करना, पत्थर चुनना, पानी छिड़कना, मेस में सब्जी छीलना-काटना, पानी भर कर लाना, आटा पीसना, सामान ढोना, चूल्हा फूंकना और न जाने क्या-क्या काम सीमा पार से आए युवकों से करवाया जाता था। सहगल ने कश्मीर की त्रासदी का बड़ी बारीकी से अनुभव कर विवेचन किया है। उग्रवादियों की एक फौज का ज़नरल मुहम्मद खां से शबाशी पाने के लिये आबिद अपने घिनौने कृत्यों में रहते हुये वो नौजवान हमारे पालतू कूत्तों की तरह हमारे इशारों पर चलना सीख जाते है। उन्हें मालूम होता है कि हमारे इशारे से एक कदम भी हटना उनके लिये मौत के समान होता है हिन्दुस्तान जाने के बाद भी उन्हें हुक्मनामे यहां से भेजे जाते है। हम इन्हें हिन्दुस्तान के खास-खास अफसरों, लीडरों और सूझबूझ वाले लोगों की लिस्टें देते है। ताकि वो मौका पाकर उनका कत्ल करते है। इसी तरह सुरक्षा दलों द्वारा पकड़े गए आतंकवादियों के बयानों और कल्पना के बल पर गढ़े गए विभिन्न दुश्यों द्वारा लेखक सीमा पार चलने वाले घिनौने क्रियाकलापों से पाठक को अवगत करवाता है। परन्तु एक बात निश्चित तौर पर कही जा सकती है कि उपन्यास में घटनाओं और दृश्यों के विवेचन में लेखक की उपस्थिति अधिक रही है। इसलिये सत्यता का आभास नहीं जुट पाता।

"नरमेघ" नामक यज्ञ की बलि वेदी श्रीनगर का उपन्यास में विशेष महत्व है। 'चण्डीगढ' नामक अध्याय में शिविर कैंपों में रह रहे विस्थापित पंडितों की व्यथा एवं उग्रवादियों द्वारा दी गई यातनाओं का वर्णन है तो उक्त अध्याय में उग्रवाद से प्रभावित वातावरण एवं धार्मिक कट्टरता की बात कही गई है। नरेन्द्र के पिता सोमनाथ कौल और बशीर मियां के आपसी सम्बधों की आत्मीयता चुक जाने द्वारा दोनों धर्मावलम्बियों के बीच मौजूद सहयोग की जगह नफरत और घात-प्रतिघात का वर्णन है। प्रतिस्पर्द्धा की इस भावना को मजहब के नाम पर विदेशी ताकतों ने नफरत की आग में बदल दिया और दोनों समुदायों में शेख बिरहमन, उत्पादक और व्यापारी के भद की दीवारें खड़ी कर दीं। मजहब की इस खाई को पाटने का प्रयास न तो प्रादेक्षिक सरकार ने किया और न ही राष्ट्रीय सरकार ने। पाकिस्तानी एजेन्टों ने विषाक्त प्रचार द्वारा इन संतुष्ट यवकों को सैनिक प्रशिक्षण देकर भारतीय इतिहास के पन्ने घिनौने और रक्तरंजित कर दिये। बदलते सन्बन्धों की चर्चा करते हुये लेखक लिखता है सोमनाथ कौल ब्राह्मण थे, बशीर मियां अपने को तातारी खून बताते थे दोनों का एक ही समय किसी एक रसोई में बैठे भोजन करते देखना कोई अचम्भा न था — घर की औरतों में दुपट्टा बदल बहनापा था । बशीर मियां जब हज को गये थे तो पूरा घर परिवार भाई सोमनाथ को सौंप कर निकले थे। परन्तु नई पीढ़ी का निष्कर्ष है कि हिन्दू व्यापारी चोर है, बेईमान है। धर्म की आड़ में धर्म के ठेकेदार साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देते हैं। पिछले दिनों जब हजरतबल से मुकद्दस बाल की चोरी हो गई थी – मुल्ला जी जन समुदाय में साम्प्रदायिक विष निरन्तर फूंकते रहते थे। नरेन्द्र को स्कॉलरशिप दिये

जाने पर इस्लामिक विद्यार्थी परिषद ने विरोध किया और वहां के कुलपति की हत्या कर दी गई। इसी तरह असगरी द्वारा अपनी सहेली के भाई नरेन्द्र से मेल मिलाप देख उसका भाई सांप सा फूकारता है "साँप और नेवले की क्या दोस्ती, वह काफिर तू मुस्लमान, तेरा उसका क्या भाई चारा"। रहमत इमाम बनकर मस्जिद में बैठकर अपना कार्य चलाता है। मस्जिद बारूद और बन्दूकों का भण्ड़ार बनाई जाती है। और इसी मस्जिद के आगंन में आई॰ जी॰ मिस्टर हमीद का काल किया जाता है। लेखक इस बात को भी प्रकाशित करता है कि उग्रवाद की आड़ में प्रत्येक व्यक्ति अपना उल्लू सिद्ध कर रहा है। चरित्रहीनता की बात करें तो तथाकथित से धर्म के ठेकेदार कोई भी कुकृत्य करने से नहीं हिचकते। रहमत ने अपनी कामयाबी का जश्न उस दिन हबाकदल से बलपूर्वक उठवाई एक मुस्लिम युवती जोहरा की सोहब्बत में मनाया। रहीम को झूठन ही मिली। किसी न किसी तरह कुछ कुचकी और भुगत गये। जोहरा ने दम तोड़ दिया। इस संदर्भ में शंपा का यह वक्तव्य कितना सही है "अत्याचारी की गोली खून का रंग नहीं पहचानती। स्त्री-पुरूष, बाल-वृद्ध, उसे तो रक्त पीना होता है, सबका स्वाद बराबर है।"

"सियासत आदमी को इंसानियत से गिरा देती है। राजनीति एक दरिंदगी का नाम है जब तक यह मुनष्य के अधीन होती है। वह इससे अपनी कई समस्याओं का समाधान खोज लेता है और जब मनुष्य इसके अधीन हो जाता है, तो यह उसकी मनुष्यता को दबा देती है। " लेखक के ये शब्द राजनीति के अन्तर्गत व्यकित के गुणों के हनन् की गाथा है। अपन्यास में आदि की पत्नी अजरा मानवोचित उज्जवल पक्ष को विवंचित करती है। अगर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान

मिलकर भाइयों की तरह खुदा जक की बनाई इस जमीन को बाँटें नहीं , मां समझकर दोनों उसके दूध पर पलें, तो चारों तरफ खून-खराबा नहीं, मोहब्बत की बारिश होने लगेगी। यह शब्द स्पष्ट करते है कि विषाक्त वातावरण में भी मनुष्यता मरती नहीं, हां आतंकवाद के कुहासे में उसका आकार छिप जाता है। परन्तु दूसरी तरह बेनजीर भुट्टों का जमहुरियत को दावे पर लगाने की मानसिकता राजनीति स्वार्थ की सत्यता सिद्ध करती है।

अन्तिम अध्याय में सभी कैम्पों से शरणार्थी दिल्ली के बारे क्लब पर इकट्ठा होते है। इस आशा के साथ कि प्रधानमन्त्री से बातचीत के बाद शायद उनकी विस्थापन की समस्या का हल निकल सके। परन्तु लम्बी परिचर्या के बाद कोई हल नहीं निकलता और प्रधानमन्त्री यह कहकर चले जाते है। अभी मेरी एक मीटिंग है, मैं और अधिक यहां नहीं रूक सकता। जनता का प्रतिनिधि नरेन्द्र शंपा के समक्ष अपनी वेदना व्यक्त करता है। जिस देश का प्रधानमन्त्री वोट के लिये, कुर्सी के लिये देशवासियों में भेदभाव पैदा करता है वह मक्कार तो है ही राष्ट्र के लिये भी हितकारी नहीं है। वास्तव में कश्मीरी विस्थापितों के पुर्नवास के प्रति सरकार की लापरवाही पर चोट की गई है। इसी अध्याय में लेखक नरेन्द्र प्रवीण और शंपा की त्रिकोणात्मक प्रेम कथा के माध्यम से प्रवीण द्वारा बलात्कार के बोध से आत्महीनता की ग्रन्थि से ग्रस्त नारी की मानसिकता और उसे सामान्य बनाकर शंपा परिस्थतियों की शिकार नारी में बदलाव लाना समयानुरूप मानती है। शंपा के माध्यम से लेखक की प्रगतिशील विचारधारा व्यक्त हुई है।

कुल मिलाकर बात करें तो नरमेघ शब्द बहु-आयामी है। आगजनी, बलात्कार, आंतकवादियों द्वारा अपहरण आदि

ऐसे कुकृत्य है जो, इस यज्ञ में अनेक लोगों की बलि ले चुके है। एक जागरूक उपन्यासकार की तरह सहगल जन–समूह को स्वंय अपनी रक्षा करने को प्रेरणा देता है। संवाददाता मुबारक कहता है "कुत्तों को भेड़ियों से बचना है तो इन्हीं की तरह नख दांत तीखे करने होगें"। इसी तरह बलात्कार बोध से पीड़ित नारी को लेखक सहज हो परिस्थितियों से जूझने की प्रेरणा देता है। उपन्यास की पात्र शेयर का कश्मीर के इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं। उसके दुखद अतीत में तो नारी के प्रति पुरूष की विकृत मानसिकता ही है। विमाता की मार को झेलती अनाथान में रहते हुये एक व्यापारी की हवस का शिकार और फिर प्रति आशुतोष द्वारा परिव्यक्ता शंपा नरेन्द्र से प्रणय सम्बन्ध स्थापित करती है। परन्तु नरेन्द्र और प्रवीण के प्रेम सम्बन्धों को जान कर वह पुनः अकेली हो जाती है। शंपा का निरन्तर कार्यरत रह परिस्थितियों से सामना ऐसी जागृत नारी का विवेचन है जो अपने अतीत को बाधा नहीं बनने देती और सार्थक जीवन वाली नायिका की परिकल्पना है। कश्मीर समस्या को लेकर पदमा सचदेव ने नौशीन भी लिखा। परन्तु उसमें कश्मीर त्रासदी का इतना विशद विवेचन नहीं। सहगल जी ने तो कश्मीर त्रासदी को खड़े खड़े कर विवेचित कर मानवतावाद का संदेश दिया है। व्यक्ति को मजहब के घेरे से निकाल मान मानवतावाद तक ही सीमित रखना उनका लक्ष्य है। इसलिये असगरी के शब्दों में वह कहते है। "मानवीय संवेदनाऐं मजहबों के घेरों में नहीं बंधती, वे तो सार्वथौक बनकर दुनिया को उजाला देती है"। लेखक समस्याओं का विवेचन निष्पक्ष होकर करता है तथा राजनेताओं और राजनीतिक घटनाओं का यथा तथ्य विवेचन लेखक के साहस का परिचायक है। परन्तु कुछ वर्णनों में लेखक

निबन्धात्मक रूप से स्वंय ही घटनाओं का व्यौरा देने लगता है। वहां कलापक्ष कमजोर पड़ने लगता है। परन्तु देसरी और सहज और मुहावरेदार भाषा पाठक को घटनाओं का जीवन्त परिचय देती है। अतःकुल मिलाकर यह उपन्यास विस्थापन की पीड़ा का चित्रण करने वाले उपन्यासों में विशिष्ट स्थान रखता है।

+++++

राजभाषा हिन्दी

डॉ॰ मित्रेश कुमार गुप्त
(मेरठ)

प्रयोग की दृष्टि से भाषा के दो रूप होते हैं। पहला जनभाषा तथा दूसरा राजभाषा। जनता द्वारा बोली जाने वाली भाषा जनभाषा तथा शासन के कार्यों में प्रयुक्त होने वाली भाषा राजभाषा कहलाती है। यह आवश्यक नही है कि जनभाषा ही राजभाषा हो। मुसलमान तथा मुगल काल में भारत की जनभाषा हिन्दी तथा प्रादेशिक भाषाऐं जनभाषा थीं किन्तु शासन की भाषा उर्दू फारसी थी। इसी प्रकार ब्रिटिश शासन में भारत की जनभाषा हिन्दी व प्रादेशिक भाषाएँ तथा राजभाषा के पद पर अंग्रेजी आसीन थी।

स्वाधीनता के उपरांत विदेशी शासन के बोझ को अपने ऊपर से उतार फेंकने के बाद जब भारत की राजभाषा को बदलने का प्रश्न आया तो भारतीय संविधान सभा ने जिसमें सभी प्रदेशों के प्रतिनिधि थे 14 सितम्बर 1949 को भारत के सर्वाधिक भाग में बोली जाने वाली तथा स्वाधीनता आंदोलन की प्रमुख भाषा हिन्दी को देश की राजभाषा के रूप में स्वीकार किया। संविधान के अनुच्छेद 343(1) में घोषणा की गई कि "संध की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी तथा संध के शासनिक प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का अर्न्तराष्ट्रीय रूप होगा।" संविधान में आगे यह भी कहा गया कि संविधान लागू होने की 15 वर्ष की अवधि तक अंग्रेजी उन सभी कामों में प्रयोग में आती रहेगी जिनके लिए वह उस समय आती रही थी। लेकिन इस बीच हिन्दी का विकास इस प्रकार किया जाएगा कि राजकाज के अनुरूप तैयार होने पर 26 जनवरी 1965 के

बाद वह पूरी तरह से अंग्रेजी का स्थान ले ले। इसके लिए संविधान की 8 वीं अनुसूची में उल्लिखित सभी भारतीय भाषाओं के लिए मुख्यतःसंस्कृत से और गौणतः अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण करते हुए हिन्दी को समृद्ध करें। इसके अनुसार एक नई हिन्दी का स्वरूप पनपने लगा और संघ सरकार के विभिन्त्र मंत्रालयों, विभागों और उनके द्वारा राज्य सरकारों से होने वाले पत्राचार, प्रशासनिक एवं संसद की रिपोर्टो, राज्यपालों व उच्चतम न्यायालयों की नियुक्ति आदि के कार्यों में हिन्दी के प्रयोग को बढ़ावा दिया जाने लगा।

हिन्दी को बढ़ावा देने की सारी शक्तियाँ राष्ट्रपति महोदय को प्रदान की गई। अतः संविधान की इस मंशा को लागू करने के लिए राष्ट्रपति जी ने 1952, 1955 एवं 1960 में अनेक आदेश जारी किए जो हिन्दी के चरणबद्ध विकास के लिए महत्वपूर्ण थे। साथ ही सही और समुचित दिशा निर्देश मिलता रहे इसके लिए समय-समय पर विद्वानों, विशेषज्ञों की अनेक समितियाँ और आयोग बनाए गए जिनकी सलाह पर आगे का काम सुचारू हो जाए। इसी दृष्टि से 1955 में श्री बी. जी. खेर की अध्यक्षता में राजभाषा आयोग का गठन किया गया जिसकी सिफारिशों पर संसद की एक समिति ने विचार किया और उसके आधार पर राष्ट्रपति जी ने 27 अप्रैंल 1960 को हिन्दी प्रयोग सम्बन्धी व्यापक आदेश जारी किए जिनकी महत्वपूर्ण बातें थी...वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का निर्माण करना, संविधिक नियमों, विनिमयों, आदेशों का अनुवाद करना, एक मानक शब्द..कोश का निर्माण करना तथा हिन्दी का सेवाकालीन प्रशिक्षण आरम्भ करना।

हिन्दी के लिए की गई इन व्यवस्थाओं के प्रति कुछ अहिन्दी भाषी लोगों के मस्तिष्क में अशान्ति और आशकाए

पैदा होने लगी कि अब हिन्दी उन पर लादी जाएगी, अतः उन्होंने इसका विरोध करना आरम्भ कर दिया। उनकी संतुष्टि के लिए हिन्दी को राजभाषा के रूप में लागू करने की अवधि से 2 वर्ष पूर्व 1963 में राजभाषा अधिनियम लाया गया जिसके अनुसार यह व्यवस्था की गई कि संविधान लागू होने के 15 वर्ष के बाद भी हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा संध के उन सभी राजकीय प्रयोजनों के लिए जिनके लिए वह अभी काम में आ रही थी और संसद का भी कामकाज चलाने के लिए प्रयोग मे लायी जाती रहेगी। किन्तु अहिन्दी भाषियों को इससे भी संतोष नही हुआ और उन्होने हिन्दी को बढावा देने के सरकारी प्रयास का विरोध जारी रखा। इस पर 1967 में राजभाषा अधिनियम में संशोधन कर एक विशेष व्यवस्था यह कर दी गई कि हिन्दी ही संघ की राजभाषा होगी किन्तु अंग्रेजी के प्रयोग की छूट तब तक बनी रहेगी जब तक गैर हिन्दी भाषी राज्यों के विधान मण्डल अंग्रेजी को हटाने का संकल्प पारित नहीं करतें। इस संशोधन से अंग्रेजी के अनंत काल तक जारी रहने की और हिन्दी को पीछे हटाने की पूरी छूट मिल गई।

इसके विपरीत हिन्दी भाषी क्षेत्रों का हिन्दी को राजभाषा के रूप में लागू करने का दबाव केन्द्रीय सरकार पर निरंतर बना रहा। इससे अंर्न्तराष्ट्रीय जगत में भी स्वाधीन भारत की अपनी कोई राजभाषा न होने के कारण जग हंसाई होती रही तब पूनः राजभाषा प्रयोग के दायित्व को वहन करते हुए इसके विकास की दिशा स्पष्ट करने के लिए 18 जनवरी 1968 को संसद के दोनों सदनों ने एक संकल्प पारित किया। जिसकी सबसे मुख्य बात यह थी कि हिन्दी के प्रचार, विकास और संघ के विभिन्न सरकारी प्रयोजनों के लिए इसके उत्तरोतर

प्रयोग में गति लाने के लिए प्रत्येक वर्ष गहन और विस्तृत कार्यक्रम तैयार करने और उसे कार्यान्वित करने का दायित्व केन्द्रीय सरकार को सौंपा गया। इस अनुपालन में गृह मंत्रालय के राजभाषा विभाग द्वारा हर वर्ष एक वार्षिक कार्यक्रम तैयार किया जाता हैं जिसमें केन्द्रीय सरकार के सभी कार्यालयों में एक वर्ष में हिन्दी के काम में प्रगति करनें के लिएं लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं।

इसके पश्चात केन्द्रीय सरकार ने 28 जून 1967 को राजभाषा नियम राजपत्र में प्रकाशित किए जिनके अनुसार हिन्दी के प्रयोग हेतु पूरे देश को 3 भाषा क्षेत्रों में बाँटा गया। (क) क्षेत्र में बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, दिल्ली और अंडमान निकोबार (ख) क्षेत्र में गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब एंव संध शासित चंडीगढ तथा (ग) क्षेत्र में अन्य शेष सभी राज्य रखे गए। राजभाषा अधिनियम की घारा 3(3)में निर्दिष्ट सभी दस्तावेजों के लिए हिन्दी और अंग्रेजी दोनों का प्रयोग अनिवार्य रूप से किया जाएगा।

इन सब व्यवस्थाओं के बावजूद भी केन्द्रीय सरकार के कार्यालयों में अंग्रेजी का वर्चस्व बना हुआ है। यद्यपि कहीं - कहीं मूल पत्राचार भी हिन्दी में होने लगा है किन्तु शासन के 50 वर्षों के उपरांत हिन्दी आज भी उपेक्षा की वस्तु है और अनेक विभागों में अंग्रेजी मुख्य भाषा बनी हुई है। 1991 की जनगणना के अनुसार भारत में अंग्रेजी बोलने वाले लोगों की संख्या लगभग 2 प्रतिशत है। आज देश पर इन्ही 2 प्रतिशत लोगों का शासन है तथा शेष 98 प्रतिशत लोग भारतीय शासन में भाग लेने से वंचित रह जाते हैं। इससे संविधान के अनुच्छेद 19 (1) के अंतर्गत प्रदत्त कोई वृत्ति / आजीविका

अपनाने के नागरिकों के अधिकारों का हनन होता है। इसके अतिरिक्त यह नागरिक एंव राजनीतिक अधिकारों के अंर्न्तराष्ट्रीय प्रतिज्ञा पत्र जिस पर भारत ने भी 1978 में हस्ताक्षर किए थे के अनुच्छेद 25 का भी उल्लंघन है।

अंग्रेजी के कारण देश में जो दो वर्ग अभिजात वर्ग तथा साधारण वर्ग बन गए हैं उनके कारण न तो देश की शिक्षा नीति निर्धारत हो सकी है और न राष्ट्रीय एकता ही विखंडित होने से बच सकी है। आज दोनों वर्गों के लिए अलग–अलग स्कूल, अस्पताल, यात्रावहन तथा अन्य सुविधाऐं हैं। अंग्रेजी के कारण ही देश में भारतीय संस्कृति का पराभव आरम्भ हो गया है तथा अंग्रेजी की बाढ़ में बहती हुई भावी पीढ़ी को अपनी भाषा , संस्कृति, साहित्य, आदर्शो एवं मान्यताओं का कुछ भी ज्ञान नही है। नौकरशाही के गुलाम अंग्रेजी प्रेमियों का यह तर्क कि अंग्रेजी के बिना भारत उन्नति की दौड़ में पिछड़ जाएगा तथ्यहीन है। वास्तविकता यह है कि अंग्रेजी के चलते भारत उन्नति की दौड़ में निरन्तर पिछड़ता गया और फांस, जर्मनी, रूस, चीन और जापान अंग्रेजी की बैसाखी के बिना हमे मीलों पीछे छोड गए। कोरिया, वियतनाम जैसे छोटे देश भी हमसे बहुत आगे निकल गए। अपनी भाषा का सहारा लेकर अभी टर्की तथा इजराइल देशों ने अपनी प्रगति का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है वह विश्व इतिहास में अनूठा है।

स्वाधीन भारत के 95 करोड़ लोगों की अपनी कोई राजभाषा न हो यह देश के लिए लज्जा की बात है। इससे राष्द्र के स्वाभिमान और राष्द्रीय अस्मिता को जो क्षति पहुँचती है वह अकथनीय है। हमें संगाठित होकर एक राष्द्र की अवधारणा को साकार करना है और अपने देश के शासन

की भाषा संविधान सभा द्वारा अंगीकृत हिन्दी को अंग्रेजी के स्थान पर राजभाषा के पद पर सच्चे मन से प्रतिष्ठित करना है। इतना ही नही हमें प्रयास करके हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषा भी बनवाना है। विश्व में चीनी तथा अंग्रेजी के बाद हिन्दी का तीसरा स्थान है तथा 119 विश्वविद्यालयों में यह पढाई जाती है अतः कोई कारण नही कि हिन्दी संयुक्त संघ की भाषा न बन सके।

+++++

आन्ध्र के नाटककार – गुरजाडा अप्पाराव

श्री प्रभु एम,
हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद

आन्ध्र में तेलुगु भाषा में सौ वर्ष से अधिक कालावधि तक जीवित अर्थात पठित एवं मंचित होनेवाला एक मात्र नाटक गुरजाड़ा अप्पाराव का कन्याशुल्कम ही हैं। इसे गुरजाड़ा अप्पाराव जी ने सन् 1892 में लिखा और मंचित कराया था। अपनी सुधारवादी विचार धारा को आम जनता तक पहुंचाने वाले तेलुगु के प्रथम उपन्यासकार, कहानीकार, नाटककार एवं समालोचक वीरेशलिंगम से प्रभावित होकर गुरजाडा अप्पाराव साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया। व्यावहारिक (बोलचाल) की भाषा का समर्थन करते हुए, बोलचाल की और पात्रोचित भाषा में रचना करने वाले प्रथम व्यकित थे अप्पाराव।

गुरजाडा अप्पाराव का जन्म 21 सितम्बर 1862 को और निधन 30 नवम्बर 1915 को हुआ था। आपने 1886 में बी॰ ए॰ की उपाधि प्राप्त करने के बाद विजयनगरम महाराजा के कालेज में अध्यापक नियुक्त हुए, विजयनगर के महाराजा आनंद गजपति ने रियासत में प्राप्त शिलालेखों के परिशोधक के रूप में नियुकत किया था।1897 में पहली बार कन्या शुल्कम प्रकाशित किया और 1892 में इसका मंचन किया गया। यद्यपि कन्या शुल्कम के अतिरिक्त अप्पाराव ने नीलगिरि के गीत, मुत्याल सरालु, पूर्णम्मा की कथा तथा देश भकित के कई गीत लिखे है। कन्या शुल्कम मुत्याल सरालु के कारण वे तेलुगु साहित्य में अमर हो गए हैं।

कन्या शुल्क नाटक में प्रयुक्त पात्रोचित भाषा,

तत्कालीन ब्राह्मण परिवारों में बोली जाने वाली भाषा अधकचरे अंग्रेजी ज्ञान को बघारने वाले ढोंगी युवकों की भाषा के प्रयोग से यह नाटक जीवित बन पड़ा है। कन्या शुल्क अनमेल वृद्ध विवाह अधकचरे अंग्रेजी ज्ञान से उत्पन्न ढोंग जैसे कुप्रभावों पर करारा व्यंग्य करते हुए गुरजाडा ने इस नाटक की रचना की थी। कन्याओं को शुल्क पर बेचना, बूढों का कन्याओं को खरीद कर विवाह करना, विधवाओं पर किए जानेवाले अत्याचार , वेश्या प्रथा, अधकचरी अंग्रेजी शिक्षा से ढोगी युवको की धोखे बाजी जैसी समस्याओं पर व्यंग्य कसकर गुरजाडा ने साहित्य को समाज सुधार को सफल ही नहीं समाज में व्याप्त अंध विश्वासों और कुरीतियों का जोरदार खण्डन किया हैं। वास्तव में एक मूर्ख धन का लालची अग्निहोत्रावधानी अपनी बड़ी बेटी की शादी एक बूढे से कर उसे विधवा बना देता है। यहाँ तक कि बुद्धि भ्रष्ट पिता अपनी दूसरी बेटी की शादी सत्तर वर्ष के लुबधावधानी बूढे से करने को तैयार हो जाता है। अग्निहोत्रावधानी केवल धन का भूखा और प्रलोभन से भरा सब कुछ करने के लिये तैयार होता है। किन्तु उसकी पत्नी वेंकम्मा इस बात से राजी नहीं होती और अत्महत्या करने की धमकी देती है। उससे अग्निहोत्रावधानी पर कोई प्रभाव नहीं पडता वह शादी की तैयारी करता रहता है।

अवधानी का पुत्र वेंकटेशम बुद्धू है। अंग्रेजी शिक्षा हेतु शहर भेजने पर भी उसे अंग्रेजी तो नहीं आती पर अपनी कमजोरी एवं असफलता को छुपाने के लिए ढोंगी, धाखेबाज गिरीशम को साथ लेकर छुट्टियों में घर आता है। गिरीशम धीरे धीरे बुच्चम्मा के मोहजाल पर फंस जाता है। एक दिन बुच्चम्मा गिरीशम के साथ भाग जाती है।

इधर करटक शास्त्री अवधानी का साला सुब्बी की शादी को टालने के लिए रामप्पा पंतुलु के पास जाता है। पंतुलु के यहां मधुरवाणी नामक वेश्या की सहायता से शास्त्री के शिष्य को दुलहिन का वेष पहना कर लुब्धावनी से शादी करा देती है। उधर अग्निहोत्रावधानी अपने परिवार के साथ शादी के लिए आता है तो रास्ते में ही उसे बुच्चम्मा के भाग निकलने और लुब्धावधानी की शादी की बात मालूम होती है। वह अंग्रेजी शिक्षा को इस सब का मूल कारण मानता है।

इस प्रकार कन्याशुल्कम वास्तव में यह केवल नाटक ही नहीं वरना तत्कालीन आन्ध्र जाति के राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक जीवन का जीता जागता दर्पण है। तेलुगु साहित्य के प्रसिद्ध समालोचक डॉ॰ निडदवोल वेंकटराव के शब्दों में कन्याशुल्कम समाज में जड़ जमाए दोषों को ही नहीं प्राच्य पश्चात्य सभ्यताओं के संघर्ष में पिसनेवाले समाज और इतिहास का चित्रण करने वाला विश्व कोश है।

वास्तव में कन्याशुल्कम एक सरल सुगम जीवंत भाषा में लिखेजाने के कारण पाठकों को मुग्ध कर देता है। यह गुरजाड अप्पाराव की कीर्तिपताका है।

+ + + + +

जम्मू कश्मीर प्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता

डॉ॰ ज़ोहरा अफ़ज़ल
रीडर एवं अध्यक्षा,
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय,
श्रीनगर

स्वाभाविक रूप से प्रत्येक मनुष्य अपनी आत्माभिव्यक्ति करना चाहता है। यह मानवीय प्रवृत्ति है कि अपने भावों और विचारों की अभिव्यक्ति से ही वह आत्मसन्तुष्टि का अनुभव करता है तथा पत्रकारिता अभिव्यक्ति का सम्पूर्ण ज्ञान है। यह दैनिक जीवन और मानव जिज्ञासा का सूत्रधार है। मनुष्य के ज्ञान की प्यास उसी समय शान्त होती है जब वह समाचार सुन अथवा पढ़ लेता है, कयों कि यह आज के युग की अनिवार्यता है।

समय और समाज के प्रति सजग रहकर तथा सामाजिक को उसके दायित्व का बोध कराने की कला को पत्रकारिता कहते हैं। पत्रकारिता के लिए अंग्रेजो मे 'जर्नलिज़्म' शब्द प्रचलित है जो 'जर्नल' से निकला है तथा जिसका शाब्दिक अर्थ है 'दैनिक'। प्रतिदिन के कार्य व्यापारों सरकारी बैठकों का विवरण 'जर्नल' में रहता है।

"17वीं एवं 18वीं शती में 'पीरियाडिकल' के स्थान पर लैटिन शब्द 'डियूरनल' और 'जर्नल' शब्दों के प्रयोग हुए। 20वीं शती में गम्भीर समालोचना और विद्वतापूर्ण प्रकाशन को इसके अन्तर्गत माना गया। 'जर्नल' से बना 'जर्नलिज़्म' अपेक्षाकृत व्यापक शब्द है। समाचार पत्रों एवं विविध कालिक पत्रिकाओं के सम्पादन एवं लेखन और तत्सम्बन्धी कार्यों को

पत्रकारिता के अन्तर्गत रखा गया। समसामयिक गतिविधियों के संचार से सम्बद्ध सभी साधन, चाहे वे रेडियो हो या टेलीविजन इसी के अन्तर्गत समाहित हैं। [1]

समाचार को अंग्रेजी में 'न्यूज़' कहते हैं। यह लैटिन के 'नोवा' संस्कृत के 'नव' से बना है। कहने का अभिप्राय यही है कि जो नित्य नूतन हो, नवीन हो वही समाचार है। नित्य नवीन समाचारों का प्रेषक, उनका सम्पादक तथा समीक्षक पत्रकार ही होता है। टी. एच. स्कॉट के अनुसार "पत्रकार वह व्यक्ति है जो थोड़े थोड़े समय के अन्तर पर प्रकाशित अपनी रचनाओं से जनमत को एक निश्चित दिशा में प्रभावित करना चाहता है।"

समाज का वास्तविक थर्मामीटर तो समाचार पत्र ही है जिसमें सामाजिक वातावरण का तापमान दिखाई देता है। समाचार पत्र हमारे दैनिक जीवन के अनिवार्य अंग हैं। पत्रों के अतिरिक्त आकाशवाणी तथा दूरदर्शन भी अब पत्रकारिता के अन्तर्गत ही आते हैं। प्रकाशन चित्रों द्वारा प्रस्तुतीकरण तथा प्रसारण के लिए संग्रहित सामयिक और सरस तथ्यों के सम्पादन को भी पत्रकारिता कहा जा सकता है।

जीवन की विविधता और नित नूतन साधनों की बहुलता ने पत्रकारिता को बहु-आयामी बना दिया है; जैसे खोजी पत्रकारिता, आर्थिक पत्रकारिता, ग्रामीण पत्रकारिता, व्याख्यानात्मक पत्रकारिता, विकास पत्रकारिता, बाल पत्रकारिता, संसदीय पत्रकारिता, रेड़ियो पत्रकारिता, वृतान्त पत्रकारिता फोटो पत्रकारिता आदि।

---

1. आधुनिक पत्रकारिता – डॉ॰ अर्जुन तिवारी, विश्व विद्यालय, प्रकाशन चौक, वाराणसी, पृ० : 7

पत्रकार साहित्यकार की ही भाँति हर व्यक्ति के स्वर की गहराई उसके अन्तर्द्वन्द्व उसकी अच्छी एवं बुरी शक्तियों को उचित रूप में परखने में समर्थ रहता है। अपनी कल्पनाशीलता, अनुभूति, विवेक, बुद्धि, तर्क आदि के आधार पर पत्रकार और साहित्यकार दूरबीन का काम करते हैं। साहित्य और पत्रकारिता एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मूलतः दोनों का ही मुख्य कार्य 'सत्य की खोज' और 'सत्य की स्थापना' करना होता है। इस प्रकार दोनों के उद्देश्यों में अत्यधिक समानता है। यह अलग बात है कि अपनी विकसित अवस्था में दोनों स्वतन्त्र व पृथक दिखाई देते हैं। साहित्य और पत्रकारिता दोनों ही मानवीय जीवन की निरन्तर आवश्यकताओं में से हैं। मैथ्यू आर्नाल्ड पत्रकारिता को शीघ्रता में लिखा गया साहित्य मानते हैं। — **Journalism is the literature in hurry.** पत्रकारिता और साहित्य में केवल उतना ही अन्तर है जितना सुगम संगीत एवं शास्त्रीय संगीत में है। जो व्यक्ति पत्रकरिता को साहित्यिक महत्व नहीं देते उनको लक्ष्य करके ही आचार्य शिवपूजन सहाय ने कहा है कि "हिन्दी दैनिकों ने जहाँ देश को उदबुद्ध करने में अथक प्रयास किया है, वहाँ जनता में साहित्यिक चेतना जगाने का श्रेय भी पाया है। [1]

डॉ॰ अर्जुन तिवारी के अनुसार "समय और समाज के सन्दर्भ में सजग रह कर नागरिकों में दायित्व बोध कराने की कला को पत्रकारिता कहते हैं।" गीता में जगह जगह शुभदृष्टि ' का प्रयोग है। यह शुभ दृष्टि ही पत्रकारिता है,

---

1. पत्रकारिता की परिभाषा – डॉ॰ अर्जुन तिवारी, विश्व विद्यालय, प्रकाशन चौक, वाराणसी, पृ॰ : 15.

जिसमें गुणों को परखना तथा मंगलकारी तत्वों को प्रकाश में लाना सम्मिलित है। महात्मा गाँधी तो इसमें समदृष्टि को महत्व देते थे। समाज हित में सम्यक प्रकाशन को पत्रकारिता कहा जा सकता है। असत्य, अशिव और असुन्दर पर 'सत्यं शिवं सुन्दरम' की शंख ध्वनि ही पत्रकारिता है।

जम्मू कश्मीर प्रदेश अहिन्दी भाषी होने पर भी यहाँ हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि भिन्न भिन्न रूपों में होती रही है। अहिन्दी भाषी होने पर भी इस प्रदेश का योगदान हिन्दी साहित्य में किसी भी प्रकार से कम नहीं है। विभिन्न साहित्यिक विधाओं जैसे कहानी, निबन्ध, नाटक, उपन्यास, कविता आदि। इसी प्रकार पत्रकारिता के क्षेत्र में भी इसके योगदान की सराहना करनी होगी।

जम्मू कश्मीर में इस विधा का आरम्भ 1867 से माना जा सकता है कयोंकि इसी समय जम्मू में 'विद्याविलास' नामक प्रेस की स्थापना पंडित वेंकटराम शास्त्री ने की थी। यहाँ से ही इस प्रदेश का प्रथम साप्ताहिक समाचार पत्र एक साथ हिन्दी और उर्दू, दोनों भाषाओं में 'विद्या विलास' के नाम से निकलता था। ठीक इन्दौर के 'मालवा अखबार' की भाँति जिसमें न तो कोई चकित कर देने वाला समाचार होता था और न ही किसी प्रकार की कोई टीका टिप्पणी। 'विद्या विलास ' नामक समाचार पत्र सप्ताह में एक बार शनिवार को आधा हिन्दी तथा आधा उर्दू में निकलता था। इस समाचार पत्र का महत्व दो कारणों से अधिक है; एक तो यह प्रदेश का प्रथम हिन्दी उर्दू का पत्र था, दूसरे उस समय इस प्रदेश में साम्प्रदायिक और भावात्मक एकतापूर्ण वातावरण था, जिसमें भाषा विषयक कोई संधर्ष नहीं था।

प्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता के विकास स्वरुप को

देखते हुए उसे दो भागों में विभक्त किया जा सकता है: 1. स्वतन्त्रता पूर्व हिन्दी पत्रकारिता, 2. स्वातन्त्रयोत्रर हिन्दी पत्रकारिता।

स्वन्तत्रतापूर्व हिन्दी पत्रकारिता:

हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र में जम्मू अधिक गतिशील रहा है। जम्मू में पत्रकारिता के प्रारम्भ को लेकर एक मतभेद है। सर्वसम्मति से इस विधा का आरम्भ 'विद्या विलास' से ही माना जाता है। 19वीं शताब्दी के प्रथम चरण में उर्दू साप्ताहिक 'रणवीर' का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ जिसके सम्पादक थे मुल्कराज सराफ। इसके कुछ अंकों में हिन्दी के कुछ पृष्ठ भी सम्मिलित किये गये थे। इसके अतिरिक्त जिन पत्रिकाओं का प्रकाशन शुद्ध हिन्दी में हुआ वे इस प्रकार हैं :– 'वसुधा ' (1932) सम्पादक बंसी लाल सूरी तथा सह सम्पादक 'सन्तलाल विचित्र' । 'दीपक' (1936) सम्पादक रमाकान्त। 'भारती' (1940) सम्पादिका 'शान्ता कुमारी। 'उषा' (1943) सम्पादिका शकुन्तला सेठ। 'जम्मू प्रकाश' इसके सम्पादक 'पंडित दुर्गाप्रसाद मिश्र थे, जो महाराजा प्रताप सिंह के शासन काल में एज्यूकेशन एडवाइज़र **(Education Advisor)** थे और पत्रकारिता में भी दक्ष थे। ऊषा तथा 'भारती' इन दोनो पत्रिकाओं ने 'राजभल्ला', 'कृष्णा कपूर', 'शकुन्तला सेठ', 'सत्यवती मलिक' आदि हिन्दी महिला लेखिकाओं को प्रोत्साहित करके उनकी सृजनशीलता के परिष्कार और विकास में महत्वपूर्ण योग दिया।

उर्दू साप्ताहिक 'गुलाब' में भी कभी कभी हिन्दी प्रकाशन किया जाता था। इसके अतिरिक्त जम्मू से 'जम्मू भारती' भी सप्ताह में एक बार निकलता था।

जहाँ तक कश्मीर में पत्रकारिता का सम्बन्ध है तो हम 'तूफाने कश्मीर'(1876) को प्रधम उर्दू पत्र कह सकते हैं।

जिसके सम्पादक मुंशी हरसुख राय थे। इसके प्रकाशन के कई वर्षों पश्चात् 'जम्मू गज़ट' (1884) का प्रकाशन हुआ। इसके सम्पादक मुंशी सैयद निसार अली थे। 'वितस्ता' का प्रकाशन सर्वपथम उर्दू में 1932 में हुआ। इसका श्रेय पं॰ प्रेमनाथ को जाता है। इसके अतिरिक्त कश्मीर से ही मार्तण्ड लद्दाख से बोधी भाषा में 'लद्दाख फोयियान' लद्दाख समाचार का 1903 में प्रकाशन हुआ।

कभी कभी वितस्ता और मार्तण्ड में भी हिन्दी में रचनाएं प्रकाशित होती थीं किन्तु यदि शुद्ध हिन्दी की दृष्टि से देखा जाए तो केवल 'महावीर ' और चन्द्रोदय ही इस कसौटी पर खरी उतरती है। जिसमें महावीर को कश्मीर का प्रथम हिन्दी साप्ताहिक माना जा सकता है। प्रथम हिन्दी पत्रिका होने का श्रेय इसी को जाता है। इन दोनों पत्रों को निकालने में जिन लोगों ने सक्रिय भाग लिया, वे हैं :– पं॰ दीना नाथ 'दीन', 'दुर्गा प्रसाद काचरू', वीर विश्वेश्वर, जानकी नाथ कौल आदि। दोनो पत्रों की भाषा सुबोध तथा सरल थी और इसमें उर्दू के शब्दों की मात्रा अधिक हुआ करती थी। 1936 में श्री प्रताप कॉलेज की पत्रिका 'प्रताप' में पहली बार हिन्दी के लेख तथा कविताऐं प्रकाशित की गईं। 'ज्योति' पत्रिका का नाम भी स्वतन्त्रता से पूर्व की पत्रिकाओं के साथ लिया जा सकता है। यह लिथो पर छपती थी। यह पत्रिका एक ही जिल्द में उर्दू तथा हिन्दी में छपती थी, जिसमें से उर्दू के 16 और हिन्दी के 8 पृष्ठ हुआ करते थे।

स्वातन्त्रयोत्रर हिन्दी पत्रकारिता:

स्वतन्त्रता के पश्चात इस विधा के क्षेत्र में अद्भुत प्रगति हुई। 1956 में इस प्रदेश की सरकार ने 'योजना' पत्रिका का प्रकाशन किया, जिसके सम्पादक वेद राही थे।

लगातार सात वर्षों तक छपते रहने के पश्चात 1963 में यह बन्द हो गयी, पर 1978 में फिर से इसका प्रकाशन जम्मू से आरम्भ हो गया। कश्मीर से दो मासिक पत्रिकाऐं 'कश्यप' और 'प्रकाश' 1961 और 1962 में निकलीं। किन्तु दो चार वर्षों के बाद ही बन्द हो गयीं। इन्हीं पत्रिकाओं ने डॉ॰ पुष्प, डॉ॰ शशि शेखर, चमन लाल सप्रु , डॉ॰ हरि कृष्ण कौल, शिबन्न कृष्ण रैणा, डॉ॰ रतन लाल शान्त, मधुप आदि जैसी प्रतिभाओं को उजागर किया।

कश्मीर हिदी विभाग से वार्षिक पत्रिका 'वितस्ता' का प्रकाशन 1958 में डॉ॰ हरिहर प्रसाद गुप्ता के सम्पादन में आरम्भ हुआ। बाद में कई वर्षों तक बन्द रहने के पश्चात पुनः डॉ॰ रमेश कुमार शर्मा ने इसका प्रकाशन 1966 में करके इसको पुनर्जीवित किया। इस पत्रिका को विशुद्व अनुसंधानात्मक रुप भी डॉ॰ शर्मा ने ही दिया। इस पत्रिका के माध्यम से जो साहित्यकार प्रकाश में आए वे हैं :– शामा सेठी, डॉ॰ निज़ामुद्दीन, डॉ॰ अय्यूब प्रेमी, डॉ॰ रोशन लाल ऐमा, डॉ॰ भूषण लाल कौल, डॉ॰ सोमनाथ कौल, डॉ॰ रमेश कुमार शर्मा, डॉ॰ अशेक कुमार पण्डित, डॉ॰ रामदयाल कटारा आदि।

कश्मीर की अपेक्षा जम्मू क्षेत्र में हिन्दी पत्रकारिता को अधिक अनुकूल परिवेश तथा परिस्थितियाँ मिली हैं। यहाँ से डुग्गर समाचार, घोषवती धर्ममार्ग, प्रतिभा, मधुरिमा, साक्षर, सवेरा, समर्थन, शीराजा, निस्तन्द्र, मन्तव्य आदि पत्रिकाओं का प्रकाशन होता रहा है। अच्छी श्रेष्ठ पत्रिका के रुप में 'शीराजा' का नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण है। 1965 में इस पत्रिका का प्रकाशन सर्वपथम स्वर्गीय नरेन्द्र खजूरिया द्वारा किया गया। उनके निधन के पश्चात श्याम लाल शर्मा, फिर रमेश मेहता

इसका सम्पादन करते रहे। आज कल इसके उत्तरदायित्व को प्रमुख सम्पादक के रुप में बलवन्त ठाकुर तथा सम्पादिका श्रीमती ऊषा व्यास बड़ी कुशलता और योग्यता से संभाले हुए हैं। इस पत्रिका में आलोचनात्मक, गवेषणात्मक निबन्धों के साथ अच्छी कविताओं और कहानियों को बराबर स्थान दिया जाता है। सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इसमें युवा वर्ग को अत्याधिक प्रोत्साहन मिला है। इस पत्रिका के द्वारा जम्मू कश्मीर के स्थानीय लेखकों और कवियों को अपनी रचनात्मक प्रतिभा प्रकट करने का सुन्दर अवसर मिलता रहता है।

इसके अतिरिक्त कुछ लघु पत्रिकाओं को हमें नहीं भूलना चाहिए जैसे दैनिक कश्मीर टाइम्स, एस. पी. कॉलेज से 'प्रताप', अनन्तनाग महिला कॉलेज का 'हीमाल', कश्मीर विश्व विद्यालय का 'गुलाला', नव जम्मू आदि पत्रिकाओं के द्वारा कई लेखको ने हिन्दी सहित्य में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बनाया है।

अब तक प्रायः अक्षरों से भरे मुद्रित समाचार पत्र ही पत्रकारिता के प्रतीक समझे जाते रहे हैं किन्तु आज मुद्रित समाचार पत्रो या पत्रिकाओं से लेकर रेड़ियो, टी. वी, वीडियो जैसे सम्प्रेषण के माध्यम इसी के अंतर्गत आते हैं। अब पत्रकारिता का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत हो गया है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस प्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता का भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है।

+++++

समकालीन हिन्दी कविता में बाबरी मस्जिद के विध्वंस का प्रतिफलन

डॉ॰ रणजीत

दिल्ली में श्री विश्वनाथ प्रसाद सिंह की कांग्रेस विरोधी सरकार की स्थापना के बाद जब श्री सिह ने मंडल कमीशन की रिपोर्ट को स्वीकार कर पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण की व्यवस्था लागू की तो पुरे सवर्ण वर्ग में एक अभूतपूर्व आक्रोश फैल गया और उन्हें प्रधानमंत्री बनाने में सहयोग देने वाली भारतीय जनता पार्टी ने अयोध्या में राम जन्मभूमि मन्दिर बनाने का सवाल उठाकर मंडल का उत्तर कमंडल से देने की कोशिश की। थोड़ी प्रांरभिक हिचक के बाद वी॰ पी॰ सिंह ने श्री अडवाणी की रथयात्रा रोकी और अपनी सरकार गिरा ली। अक्तूबर 90 में उत्तर प्रदेश की मुलायम सिंह सरकार ने ऐतिहासिक बाबरी मस्जिद पर हिन्दू साम्प्रदायिक संगठनों के उन्मादपूर्ण हमले को जिसे कार सेवा का नाम दिया गया, किसी तरह रोक लिया पर बाद में उसी स्थान पर रामजन्मभूमि मंदिर बनाने के लिए पैदा किये गये उन्माद की फसल काटते हुए उत्तर प्रदेश में भाजपा की सरकार बनी और दिसम्बर 92 में उसकी सहमति तथा केन्द्र की नरसिंहराव सरकार की मिलीभगत से विश्वहिन्दू परिषद बजरगदल तथा शिवसेना जैसे फासिस्ट प्रवृति के हिन्दू साम्प्रदायिक संगठनों ने साढे चार सौ साल पुरानी इस ऐतिहासिक इमारत के तीनों गुम्बद ध्वस्त कर दिये और इस तथाकथित रामजन्मभूमि पर एक पक्का चबूतरा बना लिया। कल्याण सिंह सरकार के त्यागपत्र और राष्ट्रपति शासन लागू किये जाने के बावजूद नरसिंहराव सरकार ने इन

उन्मादी विध्वंसक सगठनों को अपना कार्य पूरा करने के लिए पूरे चालीस घंटे की खुली छूट दी।

अयोध्या की इन घटनाओं ने हिन्दी की प्रगतिशील कविता की चेतना को बुरी तरह झकझोरा। उन दिनों के उन्मादपूर्ण वातावरण को एक कवि ने इन पंक्तियों में रूपायित कियाः

पढने लायक नही रह गये हैं अखबार
सुनने लायक नही रह हैं खबरें
जाने लायक नहीं रह गये हैं रिश्तेदार
सफर की छोड़िये
घर बैठकर शान्ति से सांस लेने लायक
नहीं रह गया है इस देश का माहौल
प्यार तो बड़ी दूर की बात है
बात करने लायक नहीं रह गये हैं पड़ोसी
राम जन्मभूमि ने ऐसा पगला दिया है लोगों को
यह देश जीने लायक नहीं रह गया है।

....पृथ्वी के लिए,पृष्ठ 110

और गहरी वेदने से भरकर यह सवाल पूछा देश के लोगों सेः

मस्जिद भी रहे, मंदिर भी बने, क्या यह बिल्कुल नामुमकिन है?
हिलमिल कर हम सब साथ रहे, क्या यह बिल्कुल नामुमकिन है?
इक मंदिर बने अयोध्या में, इसमें तो किसो को उज्र नहीं।
पर वह मस्जिद की जगह बने, यह अंधी जिद है, धर्म नहीं।
क्या राम जन्म नहीं ले सकते, मस्जिद से थोड़े हट करके?
किसकी कट जाएगी नाक अगर, मंदिर मस्जिद हों सट करके?

अभिशप्त भाग, 130

पर साम्प्रदायिक शक्तियों का विवेक से क्या वासता, उनके लिए तो उन्माद ही है सत्ता प्राप्ति का रास्ता। सो उन्होंने

उन्माद फैलाया और बाबरी मस्जिद ध्वस्त हुई। इस "उन्माद के खिलाफ" 1993 में समकालीन साहित्य मंच, वाराणसी द्वारा प्रकाशित इसी नाम की काव्य–पुस्तिका में, जिसे समता संगठन के श्री राजेन्द्र राजन ने संपादित किया है, दस हिन्दी कवियों की प्रासंगिक कविताऐं संकलित हैं। कुंवर नारायण इस विध्वंस के बारे में सोचते हुए राम को संबोधित करते हैं:

हे राम
जीवन एक कटु यथार्थ है
और तुम एक महाकाव्य!
तुम्हारे बस की नहीं
उस अविवेक पर विजय जिसके दस बीस नहीं
अब लाखों सिर लाखों हाथ हैं
और विवेक भी अब
न जाने किसके साथ है

अयोध्या 1992, उन्माद के खिलाफ

और चन्द्रकान्त देवताले महसूस करते हैं:

भूकम्प के बाद
खड़े होने लगते हैं घर
तूफान के बाद
जाल और डोगिया सुधरने लगते हैं
मछुए और मल्लाह
पर इस मलबे में दब कर
क्षत–विक्षत हुए ईश्वर को
शायद ही जोड़ पाऊंगा मैं

खतरनाक हुआ वर्ष, वही, पृष्ठ 5

एक गहरे दर्द के साथ महाकाव्यों की अयोध्या को आज की वीभत्स अयोध्या में बदलती देखते हैं राजेन्द्र

राजन और अचकचा कर पूछते हैं :–

यह कौन सी अयोध्या है
जहां सिर्फ तोड़ने के लिए दिये गये वचन
यह कौन सी अयोध्या है
जहां बनी नहीं कोई मर्यादा
यह कौन सी अयोध्या है
जहां टूट रहा देश
यह कौन सी अयोध्या है
जहां से फैल रहा है सब ओर
अमंगल का क्लेश

वही, पृष्ठ 16

अपनी एक दूसरी कविता 'बुखार पर्व' में राजेन्द्र राजन ने रामजन्मभूमि के नाम पर पैदा किये गये धार्मिक उन्माद की बड़ी सटीक अभिव्यक्ति दी है। साम्प्रदायिक शक्तियां अपनी सफलता से अभिभूत हैं कि अब दवा खरीदने के लिए निकला हुआ आदमी अस्पताल में भरती अपने परिजन के बारे में नहीं सोचता, रामजन्मभूमि के बारे में लगाये गये एक पोस्टर पर सोच रहा है। लोग सब चिन्ताएं छोड़कर आस्था के सवाल के सबसे ऊंचे तापमान पर उबल रहे हैं, और इसका परिणाम यह हुआ है कि:

जो फेंक दिये गये थे
इतिहास के कूड़ेदान में
आज वे गर्वोन्नत हैं विजेताओं की तरह
कि उन्होंने फतह कर लिया है चप्पा चप्पा
अब यहां ईश्वर भी हिल नहीं सकता
उनकी बताई हुई जगह से
बिना उनसे पूछे।

उन्माद के खिलाफ, पृष्ठ 18

मस्जिद ध्वंस पर भाजपा, शिवसेना आदि संगठनों के विभिन्न नेताओं की अलग-अलग तरह की बयानबाजी को भी इस कवि ने बड़े ही मनोरंजक और सटीक ढंग से प्रस्तुत किया है:

हत्यारों के गिरोह का
एक सदस्य हत्या करता है
दूसरा उसे दुर्भाग्य बताता है
तीसरा मारे गये आदमी के दोष गिनाता है
चौथा हत्या का औचित्य ठहराता है।
पांचवा समर्थन में सिर हिलाता है।
और अन्त में सब मिलकर
बैठक करते हैं
अगली हत्या की योजना के संबंध में।

इससे बिल्कुल अलग स्वर है राजेश जोशी का, जिन्होंने अपनी निराशा भरी कुढ़न की अच्छी अभिव्यक्ति अपनी कविता 'मारे जाएंगे' में की है:

जो इस पागलपन में शामिल नहीं होंगे
मारे जाएंगे।
धकेल दिये जाएंगे कला की दुनिया के बाहर
जो उनके गुन नहीं गाएंगे, मारे जाएंगे।
सबसे बड़ा अपराध है इस समय
निहत्थे और निरपराध होना
जो अपराधी नहीं होंगे, मारे जाएंगे।

वही, पृष्ठ 19.

+++++

देवनागरी लिपि में त्रुटियाँ एवं सुझाव

ज़ाहिदा जबीन

प्राचीन काल में मानव ने अपनी रखी हुई चीजों को सरलता से पहचानने के लिए कुछ चिह्नों का प्रयोग किया था या स्मरण के लिए किसी रस्सी या पेड़ की छाल आदि में गाँठें लगाई। मानव ने अपने भावों तथा विचारों को व्यक्त करने के लिए कुछ ध्वनियों का सहारा भी लिया जो 'भाषा' कहलाई।

भाषा द्वारा आदान-प्रदान के अतिरिक्त मानव को अपने भावों एवं विचारों को सुरक्षित रखने अथवा स्थिर बनाने की आवश्यकता हुई और उसने लिपि का आविष्कार किया। भावों एवं विचारों को जब रेखाओं, चित्रों, चिन्हों आदि के द्वारा व्यक्त किया गया तो उसे लिपि कहा गया। मिस्र निवासी अपनी लिपि का निर्माता थॉथ या आइसिस देवता को मानते हैं, प्राचीन यहूदी लोग मोजेज़ को और यूनानी लोग हर्मेस को अपनी लिपि का निर्माता मानते हैं, भारतीय धार्मिक विचार भी यही है कि लिपि के निर्माता ब्रह्मा हैं इसीलिए प्राचीन लिपि को 'ब्राह्मी' के नाम से पुकारा जाता है।

लिपि के विकास क्रम में आने वाली विभिन्न प्रकार की लिपियाँ इस प्रकार मानी जाती हैं :

1. चित्रलिपि
2. सूत्रलिपि
3. प्रतीकात्मक लिपि
4. भावमूलक लिपि
5. भाव ध्वनिमूलक लिपि
6. ध्वनि मूलक लिपि।

मानव ने सर्वप्रथम चित्रों द्वारा ही अपने मनोभावों को लिपिबद्ध करने का प्रयास किया होगा। गुफाओं में पशु, पक्षियों आदि के चित्र आज भी मिलते हैं। इस लिपि द्वारा स्थूल पदार्थों का प्रदर्शन सरलता से हो सकता था लेकिन सूक्ष्म भावों एवं गूढ़ विचारों को प्रकट करना सम्भव न था। इसके उपरान्त सूत्र लिपि का विकास हुआ। आज भी लोग किसी बात को याद रखने के लिए रुमाल या धोती के छोर में गाँठ बाँध लेते हैं। पहले किसी सूत के धागे, रस्सी या पेड़ की पतली छाल आदि में भाव या कोई बात याद रखने के लिए गाँठें डाली जाती थीं। सूत्र लिपि द्वारा कोई साधारण घटना, विशेष बात, जन्म-दिन आदि तो स्मरण रखा जा सकता है और कोई स्थूल बात भी व्यक्त की जा सकती थी, लेकिन सूक्ष्म भावों एवं गहन विचारों की अभिव्यकित सूत्र लिपि से सम्भव नहीं है, विभिन्न प्रतीकों का सहारा ले कर अपने मनोभावों एवं विचारों को अभिव्यक्त करना ही 'प्रतीकात्मक लिपि' कहलाती है। आज भी लड़की के विवाह के निमन्त्रण में सुपारी भेजने, मृत्यू संस्कार में भाग लेने के लिए कोने से फटा हुआ निमन्त्रण-पत्र भेजने की प्रथा है। भावमूलक लिपि भी चित्र लिपि का विकसित रूप है। भावमूलक लिपि में विभिन्न पदार्थों द्वारा भावों की अभिव्यक्ति करने का प्रयास किया जाता था। जैसे दुःख प्रकट करने के लिए 'आँसू' बहते दिखाना, चलने के लिए 'पैर' आदि। इस लिपि के उदाहरण चीन, अमरीका, अफ्रकिा आदि में पर्याप्त मात्रा में मिले हैं।

भावध्वनिमूलक लिपि में कुछ चिह्न चित्रात्मक तथा भावमूलक होते हैं और कुछ ध्वनिमूलक। ध्वनिमूलक लिपि ही सभी प्रकार के विचारों को व्यक्त करने की शक्ति रखती है। इसके दो रूप हैं — अक्षरात्मक एवं वर्णनात्मक।

अक्षरात्मक लिपि में एक चिह्न में एक से अधिक ध्वनियाँ आ सकती है। देवनागरी लिपि भी अक्षरात्मक लिपि है। कयोंकि इसके 'क' व्यंजन में क + अ दो ध्वनियाँ हैं तथा 'को' ध्वनि में क + ओ दो ध्वनियाँ हैं। वर्णात्मक लिपि में एक चिह्न एक ही ध्वनि या वर्ण को प्रकट करता है। जैसे रोमन लिपि वर्णात्मक है। इसमें ए, बी, सी आदि पृथक-पृथक वर्ण है और पूरा अक्षर बनने पर भी प्रव्येक वर्ण की अपनी स्थिति बनी रहती है। फोनेशियन लिपि , दक्षिणी सामी लिपि, ग्रीक लिपि, लेटिन लिपि, आर्मेइक लिपि , हिब्रू लिपि, अरबी लिपि, खरोष्ठी लिपि और ब्रह्मी लिपि ध्वनिमूलक लिपियाँ हैं।

भारत के प्राचीन शिलालेखों और सिक्कों का अघ्ययन करने पर यही ज्ञात होता है कि भारत में पहले दो ही लिपियाँ मुरव्यतः प्रचलित थी, जो ब्राह्मी और खरोष्ठी कहलाती है। परन्तु भारतीय ग्रन्थों में कितनी ही प्राचीन लिपियों के नाम मिलते हैं। जैसे जैन धर्म के 'पत्रवाणासूत्र' में 18 लिपियों का उल्लेख मिलता है। बोद्धों के ग्रन्थ 'ललितविस्तार' में 64 लिपियों का उल्लेख मिलता है जिनमें 'ब्राह्मी' और 'खरोष्ठी' लिपियों का सर्वप्रथम स्थान है।

इन सभी 18 और 64 लिपियों में से अभी तक 'ब्रह्मी' और 'खरोष्ठी' नामक दो लिपियों का ही पता चला है। बाह्मी लिपि तो निर्विवाद रूप से भारतीय लिपि ही है परन्तु खरोष्ठी लिपि के बारे में विद्वानों के अन्तर्गत मतभेद है।

ब्राह्मी प्राचीन काल में भारत की सर्वश्रेष्ठ लिपि रही हैं। इसका निर्माण वैदिक साहित्य की रक्षा के लिए अत्यन्त प्राचीन काल में ही हो गया था और इसे उन्हीं ऋृषियों एवं मुनियों ने बनाया था जिन्होंने ध्वनिशास्त्र, व्याकरण,

शब्द विज्ञान, पद-पाठ-पद्धति आदि का आविष्कार किया था।

ब्राह्मी लिपि के नाम के बारे में कहा जाता है कि इस लिपि का प्रयोग इतने प्राचीन काल से होता आ रहा है कि लोगों को इसके निर्माता के बारे में ज्ञात नहीं था और धार्मिक भावना से विश्व की अन्य चीज़ों की भाँति 'ब्रह्मा' को ही इसका भी निर्माता माना। इसी आधार पर उसे ब्राह्मी कहा गया है। इस लिपि की दो धाराऐं हैं.....उत्तरी धारा, दक्षिणी धारा।

ब्राह्मी लिपि की उत्तरी धारा मूरव्यतः उत्तरी भारत में प्रचलित रही है। इसके अन्तर्गत चार लिपियाँ विकसित हुई हैं ..... गुप्त लिपि, कुटिल लिपि, शारदा लिपि, प्राचीन नागरी लिपि। ब्राह्मी लिपि की दक्षिणी धारा का प्रचार एवं प्रसार मुरव्यतः दक्षिणी भारत में हुआ है। इस धारा के अन्तर्गत छः लिपियाँ विकसित हुई थीं – तेलगू – कन्नड़ लिपि, ग्रन्थ लिपि , तमिल लिपि, कलिंग लिपि, मध्यदेशी लिपि, पश्चिमी लिपि।

भारत की प्राचीन लिपि ब्राह्मी का प्रयोग 5 वीं सदी ई॰ पू॰ से ले कर लगभग 350 ई॰ तक होता रहा। 'ब्राह्मी लिपि' से ही 9 वी सदी के लगभग 'नागरी लिपि' का प्राचीन रूप का विकास हुआ जिसे 'प्राचीन नागरी' कहतें हैं। प्राचीन नागरी का क्षेत्र उत्तरी भारत है किन्तु दक्षिणी भारत के कुछ भागों में भी यह मिली है। दक्षिणी भारत में इसका नाम 'नंदिनागरी' है।

प्राचीन नागरी से आधुनिक नागरी, गुजराती, महाजनी, राजस्थानी, कैथी, मैथिली, असमिया, बंगला आदि लिपियों का विकास हुआ। प्राचीन नागरी से ही 'आधुनिक नागरी' विकसित हुई।

अतः बाह्मी से विकसित प्राचीन नागरी लिपि से ही 'देवनागरी' लिपि का जन्म हुआ है। इस लिपि के नाम के बारे में अनेक मत मिलते हैं —

1. प्रमुख रूप से नगरों में प्रचलित होने के कारण इसका नाम 'नागरी' पड़ा है।
2. कुछ लोगों के अनुसार ललितविस्तार में उल्लिखित 'नाग लिपि' ही 'नागरी' है अर्थात, 'नाग' से 'नागर' शब्द का सम्बन्ध है।
3. तान्त्रिक चिह्न 'देवनागर' से साम्य के कारण इसे 'देवनागरी' और फिर 'नागरी' कहा गया।
4. एक मत यह भी प्रचलित है कि पाटलिपुत्र को पहले 'नागर' और चन्द्रगुप्त द्वितीय को 'देव' कहा जाता था। उन्हीं के नाम पर इस लिपि को 'देवनागरी' नाम दिया गया।
5. 'देवनगर' अर्थात् 'काशी' में प्रचार के कारण यह देवनागरी कहलाई।
6. डॉ॰ धीरेन्द्र वर्मा का मत है कि मध्य युग के स्थापत्य की एक शैली का नाम 'नागर' था, जिसमें चौकोर आकृतियाँ होती थीं। इधर नागरी लिपि के अधिकांश अक्षर भी चौकोर होते हैं, इसी आधार पर इसे नागरी या 'देवनागरी' लिपि कहा गया है।

उक्त सभी मतों में से कौन सा मत सर्वथा ठीक है यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है।

देवनागरी लिपि का सर्वप्रथम प्रयोग गुजरात के नरेश जयभट्ट (700 - 800ई॰) के एक शिलालेख में मिलता है। आठवीं शताब्दी में राष्ट्रकूट नरेशों में भी यही लिपि प्रचलित थी। आज यह लिपि भारत के सर्वाधिक क्षेत्रों में

प्रचलित रही है। हिन्दी, संस्कृत, मराठी, नेपाली और हिन्दी की सभी बोलियों में इसी लिपि का प्रयोग होता है। महाराष्ट्र प्रदेश में इस लिपि को 'बालबोध' की संज्ञा दी जाती है। इस लिपि में धीरे धीरे अच्छाइयाँ आती गई और चौदहवी शताब्दी में आकर इस लिपि के वर्णों का रूप स्थिर हो गया, जो आजकल मिलता है। इस लिपि की कई विशेषताऐं है —

1. देवनागरी लिपि में स्वर और व्यंजनों को अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से क्रमबद्ध किया गया है। स्वरों को अलग और व्यंजनों को अलग रखा गया है। जिन वर्णों में रूपात्मक या ध्वनिगत स्तर पर साम्य है उन्हें साथ - साथ रखा गया है। जैसे .....अ, आ, इ, इ, आदि। ग, घ, द, ध, ज, झ आदि। इन वर्णों में साम्य होते हुए भी व्यतिरेक है। यह एक दूसरे के स्थान पर नहीं लगाए जा सकते हैं। ऐसा करने से अर्थ में परिवर्तन आता है।

व्यंजनों को वैज्ञानिक ढंग से वर्गीकृत किया गया है। प्रत्येक अल्पप्राण के बाद उसका महाप्राण रखा गया है।

2. देवनागरी लिपि की वर्णमाला सम्पन्न है। इसमें 14 स्वर और 35 व्यंजन हैं साथ ही तीन संयुक्त व्यंजन – क्ष, त्र, ज्ञ।

3. यह लिपि व्यवहारिक है। इसमें आवश्यकतानुसार अनेक ध्वनियाँ या चिह्नों का समावेश होता रहा है। जैसे पहले इसमें जिह्वामूलीय ध्वनियाँ क़, ख़, ग़, ज़, फ़ नहीं थे किन्तु अब बना लिए गए। इसके अतिरिकत ड़, ढ़, ॉ भी नई ध्वनियाँ हैं। ऐसा करने से यह लिपि भारत की सभी भाषाओं को लिखने के लिए उपयोगी हो सकती है।

4. यह लिपि वर्णनात्मक है और इसके वर्णों के नाम उच्चारण के सर्वथा अनुरूप हैं। जैसे फ़ारसी लिपि में वर्ण को

'जीम', 'दाल' आदि कहा जाता है जबकि इसका लिखने में उच्चारण क्रमशः 'ज' और 'द' होता है। रोमन लिपि में एच(H), टी(T), एस(S) वर्ण होते है और इनका उच्चारण क्रमशः ह, ट, स होता है। परन्तु देवनागरी लिपि के वर्णों में ऐसी बात नहीं है। यहाँ जो वर्ण जैसा होता है उसका उच्चारण भी वैसा ही होता है।

5. इस लिपि में 'अ' को छोड कर शेष सभी स्वरों की ह्रस्व एवं दीर्ध मात्राऐं विद्यमान हैं, जिससे व्यंजनों के साथ उनका प्रयोग बड़ी सरलता से हो सकता है।

6. देवनागरी लिपि के वर्ण अत्यन्त कलात्मक , सुन्दर एवं सुगठित ढंग से लिखे जाते हैं और इस लिपि में लिखित शब्द अपेक्षाकृत स्थान भी कम घेरते हैं जैसे देवनागरी लिपि में लिखित 'महेश्वर' की अपेक्षा रोमन लिपि में लिखित '**Maheshwara**' अधिक स्थान घेरता है।

7. इस लिपि में प्रत्येक वर्ण का उच्चारण होता है। जबकि संसार की अन्य लिपियाँ ऐसी भी हैं, जिनमें बहुत से लिखित वर्णों का उच्चारण नहीं किया जाता। जैसे रोमन लिपि में लिखित अंग्रेज़ी के शब्द '**Knife**' में **K** का उच्चारण नहीं किया जाता। **K** वर्ण इस शष्द में मौन है, लेकिन नागरी लिपि में ऐसा नहीं होता।

8. देवनागरी लिपि की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें वर्णों के उच्चारण निश्चित है और वे प्रत्येक स्थान पर उसी प्रकार उच्चारण किए जाते हैं, जबकि अन्य लिपियों में एक वर्ण का उच्चारण भिन्न शब्दों में भिन्न-भिन्न प्रकार से होता है। जैसे देवनागरी लिपि में खट, पट, सर आदि शब्दों में जो वर्ण हैं, उनका उच्चारण कहीं बदलता नहीं है। किंतु रोमन लिपि में प्रायः उच्चारण बदल जाता है। **But** का

उच्चारण 'बट' होता है और **Put** का उच्चारण 'पट' न हो कर 'पुट' होता है। ऐसा देवनागरी में नहीं होता।

9. देवनागरी लिपि में एक खास विशेषता यह है कि इसका निर्माण उच्चारण को ध्यान में रख कर बड़े वैज्ञानिक ढंग से किया गया है। जैसे वाग्यन्त्र में सबसे पहले कण्ठ आता है तो यहाँ भी आरम्भिक वर्ण – अ, क, ख, ग, घ, ड. कण्ठय ध्वनियाँ हैं। इसके उपरान्त हमारे वाग्यंत्र में तालू है तो इ, च, छ, ज, झ, ञ तालव्य ध्वनियाँ हैं। तदनन्तर 'मूर्धा' आती है तो ऋ, ट, ठ, ड़, ढ़, ण मूर्धन्य ध्वनियाँ रखी गई हैं। इसके उपरान्त दाँत आते हैं तो यहाँ भी ल, त, थ, द, ध, न ध्वनियाँ दन्त्य हैं। इसके पश्चात 'ओष्ठ' आते हैं। यहाँ भी उ, प, फ, ब, भ, म ओष्ठय ध्वनियाँ हैं। इस तरह क्रम से वाग्यन्त्र के अनुसार ध्वनि चिह्नों का स्थान रखा गया है।

देवनागरी लिपि में जहाँ बहुत सी विशेषताऐं दृष्टिगोचर होती है, वहाँ इस में अभावों के भी दर्शन होते हैं। जैसे –

1.देवनागरी लिपि में चिह्नों की एकरूपता नहीं दिखाई देती। कुछ ऐसी ध्वनियाँ हैं, जिनके लिए एक से अधिक चिह्नों का भी प्रचार है जैसे 'र' के लिए र्, ्र, ृ, चिह्न भी हैं। 'अ' के लिए' अ्र' भी है 'ण' के लिऐ 'रग' चिन्ह भी है।

2.ऐसी ध्वनियाँ भी हैं जो उच्चारण में लगभग एक जैसी हैं। लेकिन भिन्न वर्ण है और उनका प्रयोग भी अपनी जगह ही होता है। लेकिन उनमें उनका सही स्थल याद रखना कठिन है। जैसे 'न' ,ण, म, ञ, ङ का उच्चारण लगभग एक जैसा है। श, ष और रि ,ऋ में भी ध्वनिगत समानता है।

'पण्डित' को 'पंडित' या 'पन्डित' भी लिखा जा सकता है। 'कोष' को 'कोश' भी, 'उत्पन' को 'उत्पञ' भी।

लेकिन एक ध्वनि के लिए एक ही लिपि चिह्न होना चाहिए।

3.इस लिपि में मात्राओं के प्रयोग की कोई व्यवस्था नहीं है। कहीं कोई मात्रा ऊपर लगती है, कहीं नीचे, कहीं पीछे और कहीं आगे, जैसे 'ए' की मात्रा ऊपर लगती है ै(के) ऊ की मात्रा नीचे लगती है (कू), इ की मात्रा वर्ण से पहले (कि) और ई की मात्रा वर्ण के बाद में (की)। इससे हिन्दी सीखने वाले को मात्राओं का स्थान याद रखने में कठिनाई हो सकती है।

4.इस लिपि के अक्षरात्मक होने के कारण इसका ध्वनिशास्त्रीय अध्ययन करना सर्वथा दुष्कर कार्य है क्योंकि इसके शब्दों को पढकर यह बताना कठिन है कि अमूक शब्द में कितनी ध्वनियाँ हैं। जैसे 'मर्म' शब्द में पाँच ध्वनियाँ हैं – म्+अ+र्+म+अ। किन्तु इस शब्द में केवल तीन ही ध्वनियाँ दिखती हैं।

5.'ख' वर्ण से 'र' और 'व' का भ्रम होता है जैसे 'खाना' शब्द 'रवाना' सा लगता है। 'अराम' से 'अराम' का भ्रम होता है।

6.इस लिपि में कुछ ध्वनियों की कमी है जिसके कारण यह अखिल भारतीय लिपि नहीं बन सकती। अतः मराठी, कशमीरी भाषा नहीं लिखी जा सकती।

7.कभी कभी शिरोरेखा भी बड़ी गड़बड़ी मचाती है। क्योंकि 'भ' के ऊपर शीघ्रता में पूरी शिरोरेखा लग गई तो 'म' पढा जाएगा। 'ध' वर्ण 'घ' और 'त्र' वर्ण 'ञ' भी बन सकता है।

8.इस लिपि में एक रूपता भी नहीं हैं, जो भाषाशिक्षक के लिए परेशानी उत्पन कर सकती है जैसे आइए – आइये, भ-झ, ल-ल, श-ष आदि इससे वर्ण द्वैध

उत्पन्न हो जाता है।

9.संयुक्त व्यंजनों को स्वतन्त्र व्यंजनों की तरह लिखा जाता है ,जिससे साधारण व्यकित उनको संयुक्ताक्षर नहीं समझता। जैसे क्ष,त्र और ज्ञ को कमशः क्ष, त्र और ग्य लिखा जा सकता था।

10.इस लिपि के अक्षरों में जिस प्रकार वर्ण द्वैध है, उसी प्रकार अंकों में भी द्वैधभाव दृष्टिगोचर होता है जैसे ६ –९ , ८ – ५ , ५ - . आदि।

काफी अभाव होने के उपरान्त भी देवनागरी सम्पन्न लिपि है। और इसमें कई सुधार किए जा सकते हैं। –

1.काका कालेलकर ने हिन्दी को सरल बनाने के लिए एक लेख में सुझाव दिया था कि'अ' पर मात्राऐं लगाकर सभी स्वरों की जानकारी करायी जा सकती है। जैसे.....अ, आ, अि, अी, अु , अू , अे, अै, ओ, औ, अं, अः, अँ आदि।

2.लिखने में शिरोरेखा का होना आवश्यक नहीं है। शिरोरेखा विहीन अक्षर से कई अक्षरों का भेद प्रकट हो सकता है और अक्षर में शिरोरेखा लगाने का समय भी बच सकता है।

3.वैज्ञानिक लिपि में एक ध्वनि के लिए एक ही चिह्न होना चाहिए। जबकि इस लिपि में एक ध्वनि के लिए एकाधिक चिह्न हैं। जैसे र के लिए ॅ, ्र, ृ ; अ के लिए ग्न; ण के लिए रा; झ के लिए झ;। अतः र, अ,ण और झ को मान कर अन्य चिन्हों को छोड़ देना चाहिए।

4.संयुक्त व्यंजनों – क्ष, त्र, ज्ञ को स्वतन्त्र व्यंजनों की तरह न लिख कर क्श, त्र और ग्य की तरह लिखा जा सकता है।

5.देवनागरी लिपि संस्कृत, पालि , प्राकृत, अपभ्रंश,

हिन्दी, मराठी, नेपाली, सिंधी आदि भाषाओं को लिखने में स्मर्थ है किंतु फिर भी कुछ ध्वनियों की कभी के कारण यह कुछ भाषाओं को लिखने में असमर्थ है। इसलिए इसमें हिन्दी दंतोष्ठय 'व' के लिए व के नीचे बिन्दु दे सकते है। कशमीरी वर्त्स 'च' के लिए 'च़' के नीची बिन्दु लगा सकते हैं।

6.हिन्दी के शष्दों में एकरूपता नहीं है। एक शब्द लिखने के कई ढंग हैं। इसीलिए डॉ॰ श्यामसुन्दर का प्रस्ताव था कि पंचम वर्ण को मिलाने के स्थान पर सर्वत्र अनुस्वार का प्रयोग होना चाहिए। जैसे अङ्क,अङ्ग,मञ्च या मन्च दन्त, पम्प जैसे शब्दों को अंक, अंग, मंच, दंत, पंप की तरह लिखना चाहिए।

7.डॉ॰ गोरखप्रसाद का प्रस्ताव था कि जितनी भी मात्राऐं लगाई जाए , वें सभी व्यंजनों के पश्चात दाहिनी ओर लगाई जानी चाहिए। ऐसा नहीं कि कहीं दाईं और कहीं बाईं, कहीं ऊपर , कहीं नीचे। सभी मात्राओं के चिन्ह भिन्न ही रहेंगें।

8.काशी के विद्वान श्रीनिवास जी ते सुझाव दिया था कि देवनागरी लिपि को सरल बनाने के लिए सभी महाप्राण ध्वनियाँ निकाल देनी चाहिए। उनके सथान पर अल्पप्राण ध्वनि के नीचे कोई चिह्न लगा कर उसे महाप्राण बनाया जा सकता है! इससे लिपि के अक्षर एवं वर्ण कम हो जाऐंगें और यह अधिक उपयोगी हो जाऐगी।

9.अक्षरों में समानता के कारण भ्रम उत्पन्न होता है इसलिए 'ख' को 'रव' के भ्रम से बचाने के लिए मिला कर 'ख' लिखना चाहिए और ध, भ, ष को बिना शिरोरेखा लिखना चाहिए।

डॉ॰ गोरख ने भी कुछ सुझाव दिए थे जिस से

हिन्दी टाइप 700 से घटकर 200 रह जाती। इस प्रकार देवनागरी लिपि का अध्ययन करने पर इसके लिए कई सुझाव ढूँढ़े जा सकते है। जिससे यह लिपि अधिक वैज्ञानिक और उपयोगी बन सकती है।

+++++

हिन्दी कहानी में श्रीमती मन्नू भण्डारी की भूमिका

श्रीमती रुबी जुत्शी

कहानी वास्तव में एक क्षण की गहन अनुभूति का प्रकट रुप है। सीमित क्षेत्र के भीतर कम से कम पात्रों के पारस्परिक व्यवहार से कहानी आकार ग्रहण करती है। भारतीय साहित्य में कहानी लेखन के प्रथम संकेत वैदिक साहित्य में मिलते हैं। ऋग्वेद में 'दशराग सूक्त' 'इन्दसूंक्त' और 'यम-यमी - सम्वाद' आदि मिलते है। वैदिक कहानी साहित्य के बाद महाभारत की कहानियाँ और पुराणों से प्राप्त होने वाली सामाजिक, ऐतिहासिक, काल्पनिक और शिक्षास्पद कहानियों के साथ-साथ बौद्धों ने प्रसिद्ध जातक कथाओं की रचना की।

19 वीं शताब्दी तक हिन्दी में गद्य के अभाव के कारण कहानी का आरम्भ देर से हुआ। हिन्दी कहानी की सर्वप्रथम रचना सैयद इंशा अल्ला खाँ की "रानी केतकी की कहानी" सन् 1860 के आसपास प्रकाशित हुई। इसके बाद राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द की "राजा भोज का सपना", भारतेन्दु हरिचन्द्र की "एक अद्भुत और अपूर्व स्वप्न" और किशोरी लाल गोस्वामी की "इन्दुमती" पर्याप्त चर्चित रही हैं। "इन्दुमती" पर "टेम्पेस्ट" का प्रभाव दिखाई देने के कारण हिन्दी आलोचक "इन्दुमती" को पहली कहानी मानने के लिए तैयार नहीं हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार अनुसार 'ग्यारह वर्ष का समय' बंगमहिला की 'दुलाईवाली' से पाँच साल पहले लिखी गई है किन्तु कहानी का मूल रुप अप्राप्य होने के कारण इसको पहली कहानी नहीं माना जाता है। शुक्लजी बंगमहिला की 'दुलाईवाली' को पहली मौलिक हिन्दी

कहानी मानते हैं। स्पष्ट है कि हिन्दी की पहली मौलिक कहानी 'दुलाईवाली' ही है।

हिन्दी के प्रारम्भिक प्रमुख कहानी लेखकों में प्रेमचन्द का नाम उल्लेखनीय है। इनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' र्शीषक के अन्तर्गत आठ भागों में प्रकाशित हो चुकी हैं। प्रसाद के 'आकाशद्वीप, आँधी' और 'इन्द्रजाल' नामक कहानीसंग्रह प्राप्त होते हैं। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की तीन कहानियाँ मिलती हैं – 'उसने कहा था', 'बुद्व का काँटा' तथा 'सुखमय जीवन' श्री जी॰ पी॰ श्रीवास्तव की कहानियों में हास्य रस की प्रधानता है। ऐतिहासिक कहानीकारों में बाबू वन्दावनलाल वर्मा पर्याप्त चर्चित रहे हैं। इसके अतिरिक्त श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इसके अतिरिक्त आचार्य चतुरसेन शास्त्री तथा सुश्री विमादेवी ने भी ऐतिहासिक कहानियों की रचना की है। मनोवैज्ञानिक कहानीकारों में जैनेन्द्र कुमार, अज्ञेय और इलाचन्द्र जोशी की कहानियों में मन की उलझी हुई ग्रन्थियों को मनोविश्लेषण की सहायता से सुलझाने का प्रयत्न किया गया है। प्रगतिवादी कहानियाँ लिखने वालों में यशपाल, रांगेय राघव, धर्मवीर भारती, हंसराज रहबर और कृष्णचन्द्र मुख्य हैं।

20वीं शताब्दी के तीसरे दशक से हिन्दी में राजनीति, विज्ञान, मनोविज्ञान और दर्शनशास्त्र आदि अनेक नवीन विषयों को लेकर कहानियाँ लिखी गई हैं। कहानी रचना के क्षेत्र में महिलाओं ने भी अनुभूति के स्तर पर विविध प्रयोग करके अपना एक विशेष स्थान बना लिया है। इन लेखिकाओं में श्रीमती शिवरानी देवी, होमवती, कमला चौधरी, सत्यवती मल्लिक, उषादेवी मित्रा शिवानी, श्रीमती मन्नू भण्डारी, रज़िया तहसीन, जमीला हाशमी, मेहरून्निसा

परवेज़ आदि लेखिकाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। महिला लेखिकाओं ने नवीन विषयों को लेकर शुद्ध यथार्थवादी कहानियाँ लिखी हैं। जिनमें आधुनिक सामाजिक जीवन की नाना विकट स्थितियों को युगबोध के स्तर पर विश्लेषण किया गया हैं। महिला मनोवैज्ञानिक लेखिकाओं में मन्नू जी का नाम अग्रणी है इन्होंने केवल एक ही विषय पर नहीं लिखा है अथवा एक ही विधा को नहीं अपनाया है। एक उपन्यासकार, नाटककार, बाल साहित्यकार और कहानीकार के रूप में वे पर्याप्त चर्चित रही है। अपनी कहानियों में इन्होंने विविध प्रयोग किये हैं।

दाम्पत्य जीवन में व्याप्त विविध विसंगतियों को लेकर उन्होंने अनेक कहानियाँ लिखी है। आज वैवाहिक ज़ीवन में 'अंह' भाव ने कई प्रकार की उलझनें उत्पन्न की हैं। आजकल स्त्री-पुरूष के मष्तिक में 'अंह' कूट कूट कर भरा हुआ है। 'अंह' भाव के कारण सम्बन्धों में दरार भी पड़ जाती है। वे हठ वश ' अंह' को छोडने के लिए तैयार नहीं होते हैं। उदाहरण के लिए: ''खाने के लिए अपनी नौकरी पर निर्भर करती हूँ और जीने के लिए आपनी कला पर, फिर मेरी और देखकर बोली, तेरे पास ही घर मिल गया तो संकट मुसीबत के समय तुझ पर निर्भर करूँगी, विभु इस सब में आते ही कहाँ हैं?''[1] उन्होंने अपनी कहानियों के द्वारा जीवन की विसगंतियों को समसामयिक सामाजिक सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया है। समाज में अब रिश्ते केवल नाम के लिए रह गए हैं क्योंकि आज रिश्तों का कोई मूल्य ही नहीं। इसका दोषी व्यक्ति नही बल्कि सम्पूर्ण समाज है।

---

1. मन्नू भण्डारी : 'त्रिशंकु:' 'दरार भरने की दरार': कहानी: पृ॰ न॰ : 61 प्रकाशन वर्ष: सन् 1978, प्रकाशक : अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली।

आज व्यक्ति अपने जीवन में किसी भी प्रकार का हस्ताक्षेप सहन नहीं कर पाता। वह स्वतंत्र रहना चाहता है। चाहे यह हस्ताक्षेप किसी भी निकट सम्बन्धी के द्वारा ही क्यों न हो। प्रेम तथा विवाह जैसे गंभीर मामले में भी अपनी मनमानी करता है। मन्नूजी की 'नकली हीरे' कहानी इसी तथ्य को लेकर आकार पाती है । इस कहानी की इन्दु भी माता पिता की इच्छा के विरूद्ध एक साधारण टीचर से प्रेमविवाह कर लेती है। उसका विचार है कि जीवन उसका है तो अपने जीवन का निर्णय वह स्वयं क्यों न ले। समाज एंव आधुनिक परिस्थितियों ने माता-पिता को अपने अधिकारों से वंचित किया। समसामियक युग में केवल माँ-बाप बच्चे को बड़ा करके अपने पैरों पर खड़ा करने का अधिकारी है। वहीं सन्तान जीवन में अपने माँ - बाप के आदेशानुसार चल नही सकता। विवाह एक ऐसा महत्वपूर्ण निर्णय है जिससे एक प्राणी का जीवन सुधर भी सकता है और बिगड़ भी सकता है। यह निर्णय समसामियक युग में युवक - युवती स्वंय ही लेना चाहते हैं।कहानी लेखिका मन्नू जी ने ऐसी ही कई समस्याओं को आधार बनाकर लेखनी चलाई है। जो समस्याऐं पाठक के मन को छू लेती हैं और पाठक यही अनुभव करता है लेखिका किसी दूसरे पात्र या पात्रा की बात न करके पाठक की ही बात करती है।

मन्नूजी ने कहानी के कथानक के अतिरिक्त अन्य तत्वों को भी ध्यान में रखा। "नई कहानी" के अन्य कथाकारों के पात्रों की तरह इनके कथापात्र भी मनोविज्ञान से प्रभावित होकर मनोविश्लेषण के द्वारा बाहर की अपेक्षा भीतर के व्यक्तित्व को ही अधिक प्रकाशित करते हैं। जीवन की विफलताओं से त्रस्त और विवश होकर आज व्यक्ति हर कदम

पर टूटता नज़र आ रहा है और कहीं–कहीं विद्रोही का रूप भी धारण करता है कहीं विकट स्थितियों से संघर्ष करता हुआ वह अपने व्यक्तित्व को बचाये रखने में सफल हो रहा है और कहीं वह टूट भी जाता है। किन्तु जहां भी जीवन की विषम परिस्थितियाँ जानने के लिए बाधा खड़ी करते है वहां कुण्ठित चरित्रों का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए "तीसरा आदमी" कहानी का सतीश जब कमरे में पत्नी और शेखर को देखता है तो वह भयभीत होकर यह सोचने लगता है कि बहुत बड़ी दुर्घटना होने वाली है। ऐसी आशंकाओं के कारण काफ़ी चिन्तित हो जाता है और कुण्ठित पात्र बनकर सामने आ जाता है। "एक कमज़ोर लड़की की कहानी" में निराशा का ही नहीं , व्यथा और शून्यता का बोध भी गहन रूप से होता है। इन तीनों तत्वों का बोध इस संवाद के द्वारा होता हैः "बस और जो है सब ठीक है। ज़िन्दगी को घसीट रही हूँ या जिन्दगी मुझे घसीट रही है कुछ भी समझ लेना, एक ही बात है।[1]

उनकी कहानियों के शीर्षक भी अत्यन्त प्रभावशाली एंव सार्थक हैं। उन्होंने सम्पूर्ण वातावरण, मूलकथ्य, पात्र योजना एवं उददेश्य को ध्यान में रखकर कहानियों के शीर्षक चुने है। मन्नू जी ने हिन्दी कहानी सहित्य को अमूल्य कृतियाँ प्रदान की हैं। हिन्दी कहानी को समसामयिक सन्दर्भों के साथ जोड़कर नई दिशा प्रदान की है। उनका योगदान कथ्य एवं अभिव्यक्ति की दृष्टि से पर्याप्त महत्वपूर्ण है। आज कहानी जीवन के यथार्थ का पर्याय बन चुकी है। बाह्य

1. *मन्नू भण्डारी : " मैं हार गई " : एक कमज़ोर लड़की की कहानीः कहानीः पृ॰ न॰: 57 प्रकाशन वर्षः सन 1957 प्रकाशक : अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली ।*

जीवन की अपेक्षा व्यक्ति की मनःस्थितियों के चित्रांकन में कहानीकार को विशेष रूचि है। आज कहानी जिन्दगी के किसी महत्वपूर्ण क्षण को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करती है। कहानी लेरिवका मन्नूभण्डारी के रचना संसार का तो यही आकर्षण है।

+ + + + +

निराला के काव्य में राष्ट्रीयता

मुश्ताक अहमद
अनुसन्धित्सु
हिन्दी विभाग

भारत लगभग आठ सौ वर्षों तक विभिन्न विदेशी शक्तियों के अधीन रहा है। एक लम्बे युग तक परतन्त्र रहने के कारण इस देश की धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक परिस्थितियाँ बदलती रहीं। देश की पराधीनता का एक मुख्य कारण राष्ट्रीयता का अभाव भी माना जाता है। ऐसी स्थिति में जन साधारण को सचेत करने के लिए तथा देश को इस संकट से निकालने के लिए तथा देश को इस संकट से निकालने के लिए निस्वार्थ विचारक, राज्यदर्शी एंव लेखक विशेष भूमिका निभाते हैं। महाकवि तुलसी दास ने राष्ट्रीयता स्वरूप का बोध होने पर अपने देश की राष्ट्रीय स्थिति को हीनावस्था में पाया और पराधीनता के प्रकोप से परिचित होकर कहा है "पराधीन सपनेहु सुख नाहीं"[1] साहित्य समाज का दर्पण होता है। यधपि उस में व्यक्ति की आत्मचेतना प्रमुख रूप से व्यक्त होती है पर वह इस प्रकार व्यकत की जाती है कि वह समष्टि का रूप धारण कर लेती है।

राष्ट्रीयता का सम्बन्ध पूर्ण रूप से मानसिक है। इस की कोई विशेष परिभाषा निर्धारित करना अत्यन्त कठोर और दुरूह है। इस सम्बन्ध में कुछ प्रमुख विचारकों एवं लेखकों की परिभाषाओं को देखा जा सकता है। "वास्तव में राष्ट्रीयता के उग्र और अनुदार रूप ने ही कालान्तर में राष्ट्रवाद को जन्म दिया, जो आज भी अपने किसी न किसी रूप में विश्व के सारे देशों में है"। [2]

---

1. *तुलसीदास रामचरितमानस पृ. 94.*
2. *डॉ॰ भगवानदेव यादवः निराला काव्य का वस्तुतत्त्व पृः 67*

आर॰ एन॰ गिलक्राइस्ट के अनुसार "राष्ट्रीयता एक भावात्मक संवेग या सिद्धान्त है, जो विशिष्ट भूखण्ड की एक ही जाति, एक भाषा, एक धर्म, समान ऐतिहासिक परम्पराओं,समान हितों, समान राजनीतिक संघटन और राजनीतिक एकता के समान आदर्श के साथ किसी विशाल जन समुदाय के बीच उत्पन्न होता है।[1]

जे॰ एच॰ हेज कार्ल्टन के अनुसार "सामान्य और ऐतिहासिक परम्पराओं की एकता ही राष्ट्रीयता है"।[2]

डॉ॰ सुधीन्द्र का मत है "भूमि भूमिवासीजन, और जन–संस्कृति, तीनों के सम्मिलन से राष्ट्र का स्वरूप बनता है।"[3]

प्रोफेसर डचसेक "राज्य के भीतर की पारस्परिक संवेगात्मक समरूपता को ही राष्ट्रीयता मानते हैं।"[4]

होल काम्बे के शब्दों में "राष्ट्रीयता एक निश्चित गृह–देश से सम्बद्ध एक सहकारितापूर्ण संवेग, सखानुभूति अथवा पारस्परिक सहानुमूति है"।

डा॰ भीमराव अम्बेदकर के शब्दों में राष्ट्रीयता श्रेणीगत चेतना की एक अनुभूति है, जो एक ओर तो उन व्यक्तियों को, जिन में यह इतनी प्रगाढ़ होती है कि आर्थिक संघर्ष या समाजगत उंच्चता–नीचता के कारण उत्पन्न होने वाले भेद भावों को दबाकर एक सूत्र में दबा रखती है और दूसरी ओर उनको ऐसे लोगों से पृथक करती है, जो उस

*1.आर॰ एन॰ गिलक्राइस्ट : **Principles of Political Science: Page 26.***

2.जे॰एच॰ हेज कार्ल्टन : छायावादी काव्य में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना पृष्ठ 22.

3. डॉ॰ सुधीन्द्र : हिन्दी कविता में युगान्तर : पृष्ठ 164.

*4. प्रोफेसर डचसेक: **Nations and Men: International Politics Today Page 40.***

श्रेणी के नहीं हैं ''[1]

यद्यपि राजनीतिज्ञों ने राष्ट्रीयता के सम्यक विकास के लिए भूखण्ड की आवश्यकता का अनुभव किया परन्तु भौगोलिक एकता अथवा इतिहास एंव लक्ष्य की समानता और सांस्कृतिक एकता ही राष्ट्रीयता के लिए अधिक नहीं है। राष्ट्रीयता के अभाव के कारण हम शताब्दियों तक पराधीन रहे और इस तथ्य को भूल गये कि राष्ट्रीयता की एक ही सब से बड़ी शर्त है 'संघटन'। यह संघटन देश की विभिन्न जीवन धाराओं में निहित रहना चाहिए।

निराला की राष्ट्रीयता विषयक कविताएँ

''आधुनिक कवियों में निराला ही ऐसे कवि हैं जिनमें काव्य सर्जना का अपूर्व वैविध्य देखा जाता हैं।'' [2] एक और जहाँ उन्होंने छायावादी एंव प्रगतिवादी परम्परा का अनुसरण करते हुए प्रेम, नारी, प्रकृति, दर्शन, प्रार्थना से सम्बन्धित कविताऐ लिखीं दूसरी ओर राष्ट्रीयता एवं वीर रस से पूर्ण 'राम की शक्तिपूजा, तुलसीदास, शिवाजी का पत्र, बादलराग, जागो फिर एक बार जैसी अन्य रचनाऐं भी हैं।

डॉ॰ भगीरथ मिश्र के शब्दों में निराला की राष्ट्रीयता भारत की इस मिट्टी में उगती पनपती है, परन्तु इस में प्रफुलित एंव पल्लवित होती हुई बहुत दूर जाकर वह समस्त मानवता में अपने को समेट लेती है इसलिए उन की राष्ट्रीय कविताओं का धरातल बड़ा विस्तृत और बहुरंगी है।[3]

---

1. डॉ॰ भीमराव अम्बेदकर– हिन्दी कविता में राष्ट्रीय भावना– पृ॰ 7.

2. प्रो॰ धन्जय वमा– निरालाः काव्य और व्यक्तित्व– पृ॰ 35.

3. डॉ॰ भगीरथ मिश्र– निराला काव्य का अध्ययन पृ॰ 65 .

राष्ट्रीयता की उदभावना और उस की सम्यक प्रतिष्ठा के लिए अपने देश की स्थिति का परिज्ञान होना सब से पहली आवश्यकता है। निराला जी इस सम्बन्ध में अत्यन्त जागरूक तथा इच्छुक थे। निराला अपने देश के प्रति पूर्ण ज्ञान रखते थे। अतीत के प्रति विकल कल्पना, भारतीय संस्कृति एवं धर्म के प्रति अगाद्य प्रेम निराला के काव्य का प्रमुख विषय रहा है।

"कठिन श्रृखंला बजा-बजाकर गाता हूँ अतीत के गान
मुझे भूले पर उस अतीत का क्या एसा ही होगा ध्यान।"[1]

धार्मिक एकता:

निराला के काव्य में धर्म का साम्प्रदायिक रूप नहीं मिलता है। वे किसी धर्म का विरोध नहीं करते थे परन्तु वह अपने धर्म की छवि को भी बिगडता हुआ नही देखना चाहते थे।

"भारत ही जीवन-द्यन, ज्योतिर्मय परम रमण,
सर-सरिता, वन-उपवन तपः पुंज गिरि-कन्दर
निर्झर के स्वर पुष्कर, दिक प्रान्तर मर्म मुखर" [2]

इसमें कोई संदेह नही है कि देश की परतन्त्रता के कारण निराला के काव्य में धर्म निर्पेक्षता का अभाव दिखाई देता है। निराला अत्यन्त खुले ढंग से हिन्दु धर्म, जाति एंव संस्कृति के पक्षपाती रहे हैं।

वह किसी भी विदेशी शक्ति का प्रभाव स्वीकार नहीं करते थे। बहुमत की दार्शनिक और सांस्कृति चेतना उनके व्यक्तिव में पूर्ण रूप से समाहित है। परन्तु धर्म का

---

1. *निरालाः परिमल पृ॰ 98.*
2. *निरालाः आणिमा पृ॰ 55.*

विकृत रूप भी उसे आपने पाश में नही फंसा सका। धर्म की व्यापक दृष्टि का प्रसार होने से ही वह खुलेपन का प्रमाण देता है।

"जो करे ग्रंथ मधु का वर्णन वह नही भ्रमर,
मानव-मानव से नही भिन्न,
निश्चयः हो श्वेत, कृष्ण अथवा वह नही क्लिन्न"[1]

राजनीतिक एकताः

निराला की राष्ट्रीय कविताओं का काल भारत की दासता का काल रहा है। विदेशी शासन से दुखी होकर देश राजनीतिक स्वाधीनता को प्राप्त करना चाहते थे। देश में स्वाधीनता की लहर प्रबल रूप से आ चुकी थी। जनसमूह विदेशी सत्ता को उखाड़ फेंकने की मंगल कामना से पूर्ण था, निराला ने इस धारा को पहचाना और एकता के सूत्र को और भी दृढ बनाने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं।

"खुल गया रे अब अपनापन रगं गया जो वह कौन सुमन?

x x x x x x x x x x

सहस्रों के सुखः दुख अनुराग पिरोये हुए एक ही ताग
कौन यह मधुर मोन मख, याग खला जो, रहा एक जीवन?"[2]

देश के लोगों को फिर से एक माला में पिरोने का प्रयास तथा आपसी मत–भेद और फूट को छोड कर, पारस्परिक सहयोग और प्रेम का फिर से उत्पन्न होना आवश्यक है। स्वाधीनता का संघर्ष लड़ने के साथ-साथ देश के लोगों का पराधीनता रूपी अज्ञानान्धकार को पार करने के लिए 'सगंठन'

1. *निरालाः अनामिका पृ॰ 18*
2. *निरालाः गीतिका पृ॰ 22*

का निर्माण अवश्य करना होगा।

"करना होगा यह तिमिर पार
देखना सत्य का मिहिर द्वार
बहना जीवन के प्रखर ज्वार में निश्चय
लड़ना विरोध से द्वन्द्व समर,
रह सत्य–मार्ग पर स्थिर निर्भर
जाना भिन्न भी देह, निज धर निः संशय।" [1]

निराला जी देश के लागों को निजी स्वार्थ को त्याग कर प्यार से रहने का संदेश देता है। देश के लोगों को अन्याय और अत्याचार के विरूध लड़ने की शक्ति देना चाहता है जो वह खो चुके हैं। निजी स्वार्थ से ग्रस्त तथा अनेक प्रकार के क्षुद्र भावों में बंध कर वह स्वंय अपने आप को भस्म करते हैं।

"सोचो तो क्या था वह भावना पवित्र
बंधा जहाँ भेद मूल मित्र से अमित्र
तुम्ही, एक रहे मोड़, मुर्ख, प्रिय मित्र छोड
कहो कहो कहाँ होड जहाँ जोड प्यार?
इसी रूप में रह स्थिर, इसी भाव में धिर धिर
करोगे अपार तिमिर, सागर का पार" [2]

आर्थिक अकांक्षा की एकताः

भारत जो प्राचीन काल में सोने की चिडिया कहलाता था तथा इस देश को सभ्यता का अग्रदूत का श्रेय प्राप्त है। इस देश के वैभव और सम्पन्नता को हरण करने के लिए आक्रमणकारियों का तांता बंधा रहा। देश के लोग इस

1. *निरालाः 'तुलसीदास'– पृ॰ 34.*
2. *निरालाः अनामिका – 'मित्र के प्रति'– पृ॰ 13.*

अत्याचार और अन्याय को रोकने में असामर्थ्य सिद्ध हुए थे। कवि ने इस स्थिति को जान कर देश वासियों को एक जुट होकर, आर्थिक सम्पन्नता का भावमय चित्र उभारा।

"यह वही देश है परिवर्तित होता हुआ ही
देखा गया जहाँ –
भारत का भाग्यचक्र ? आकर्षण तुष्ण का
खींचता ही रहा जहाँ पृथ्वी के देशों को
स्वर्ण प्रतिमा की और "[1]

इसी संदर्भ में देश की आथिक विपन्नता का एक और उदाहरण।

"है विपत्त बडी , पड़ा है अकाल
लोग पेट भरते है खा खाकर पेडों की छाल
कोई देता नही सहारा, रहता हर एक यहाँ न्यारा"[2]

तुलसीदास के प्रतीकार्थ में भारत की सांस्कृतिक और आर्थिक विपन्नता का अत्यन्त ही मार्मिक चित्र कवि ने प्रस्तुत किया है।

"यों, मोगल पद तल प्रथम तूर्ण
सम्बद्ध देश–बल चूर्ण चूर्ण"[3]

सांस्कृतिक एकताः

निराला ने भारतीय संस्कृति की जो पुनर्प्रतिष्ठा की कल्पना की है वह राष्ट्रीयता की भावना पर आधारित है। विदेशी शक्तियों के निरन्तर आक्रमणों और उन के कुशासन से भारतीय संस्कृति की मूल छवि बिगड चुकी थी। कवि इस स्थिति से आहत हो कर अपनी मनः स्थिति को 'तुलसीदास'

---

1. निरालाः अनामिका पृ0 58

2. निरालाः अनामिका पृ0 183

3. निरालाः तुलसीदररू पृ 14

प्रथम छन्द में व्यक्त करता है।

" भारत के नभ का प्रभा पूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य,
अस्तमित आज रे तमस तूर्य दिगमण्डल,
उर के आसन पर शिरस्त्रोण,
शासन करते हैं मुसलमान,
हे अर्मिल जल, निश्चल प्राण पर शतदल [1]

मोगल काल में भारतीय मानस पर मुस्लिम संस्कृति का गहरा प्रभाव पड़ चुका था उस का अभी अन्त ही हो रहा था कि अंग्रेजों की एक सर्वथा नवनि तथा सर्वग्रासी संस्कृति का प्रसार हुआ, जिसने भारतीय संस्कृति को और अधिक अहित किया। इस प्रकार से भारतीय संस्कृति के विघटन की एक लम्बी परम्परा है जिसका कवि ने अनेक अवसरों पर मार्मिक चित्रण किया है।

"शत शत शब्दों का सांध्यकाल
यह आकुन्चित–भ्रू–कुटिल–भाल
छाया अम्बर पर जलद जाल ज्यों दुस्तर
आया पहले पंजाब प्रान्त
कौशल–बिहार तदनर्न्त क्रान्त
क्रमशः प्रदेश सब हुए भ्रान्त, धिर धिरकर" [2]

भारतीय संस्कृति और दर्शन की चेतना निराला के काव्य का मूल है। उस के आधार पर ही समस्त राजनीतिक सांस्कृतिक एंव साहित्यिक प्रभावों का प्रस्फुटन हुआ है। कवि ने जहाँ एक ओर हिन्दू भारत के पतन पर वेदना प्रकट की,

---

1. *निरालाः 'तुलसीदास' –प्रथम छन्द*
2. *निरालाः तुलसीदास –दूसरा छन्द*

वहीं दूसरी और उन्होंने मुस्लिम भारत के पतन पर भी गहरा शोक व्यकत किया है।

"यमुना की ध्वनि में है गूजंती सुहाग–गाथा
सुनता है अन्धकार खड़ा चुपचाप जहाँ
आज वह "फिरदोस" सुनसान है पड़ा
शाही दीवान आम स्तब्ध है हो रहा। "

x x x x x x x

बोलते है स्यार रात यमुना–कछार में
लीन होग या है रव शाही अंगनाओं का
निस्तब्ध मीनार मौन है मकबरे" [1]

निराला ने जहाँ एक ओर अपनी उन्नत संस्कृति पर गर्व किया है वहीं उस के पतन पर असीम वेदना को भी व्यक्त किया है। इस का चित्रण "यमुना के प्रति ' कविता में मिलता है।

"कहाँ आज वह निद्रित जीवन बंधा बाहुओं में भी मुक्त
कहाँ आज वह चितवन चेतन व्याम मोह कज्जल अभियुक्त" [2]

"जागो फिर एक बार" में कवि ने देशवासियों की उस मानसिक स्थिति का चित्रण किया जो संकोच और पतन की ओर ले जाती है। कवि जहां स्वयं इस स्थिति से पीडित है वही पर देशवासियों को सचेत करके उन में तन्द्राभंग करने का स्वर भी भर रहे हैं।

---

1. *निरालाः अनामिका –पृ॰ :12–13*
2. *निरालाः परिमल (यमुना के प्रति) –पृ॰: 50.*

"आँखें अलियों सी किस मधु की गलियों में फंसी
बन्द कर आंखें पी रही हैं मधु मौन
या सोयी कमल करों में?
बन्द हो रहा गुंजार–जागो फिर एक बार" [1]

कवि अतीत के प्रति विकल कल्पना रखते हुए भविष्य मैं आशावान है और पराधीनता का अन्त चाहते हुए फिर से भारतीय संस्कृति और हिन्दु राज्य की स्थापना की ललक प्रकट करता है।

"चाहते हो क्या तुम सनातन धर्म–धारा शुद्ध
भारत से बह जाय चिकाल के लिए" [2]

इसी प्रकार से तुलसीदास में भी अन्धकार रूपी परतन्त्रता का अन्त देखते हुऐ प्रतीकात्मक शैली में ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक संगठन की कल्पना करता है।

जागो जागो आया प्रभात
बीती वह, बीती अन्धरात
भरता भर ज्योर्तिमय पूर्वाचंल,
बांधो बांधो, किरणें चेतन,
तेज्स्वी हे तर्माजज्जीवन,
आती भारत की ज्योतिर्धन महिभावल।" [3]

निराला के काव्य में मुख्य रूपसे राष्ट्रीयता के निम्नलिखित रूप मिलते है। (1) देश की तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक दुर्दशा पर मानसिक क्षोभ, (2) आतीत के सांस्कृतिक वैभव का गौरव गान (3) राष्ट्र भाषा हिन्दी के प्रति अगाध निष्ठा। डॉ॰ धनंजय वर्मा कहते हैं, "विशुद्ध

1. *निरालाः 'जागो फिर एक बार– पृ॰ 185.*
2. *निरालाः 'जागो फिर एक बार (1) –पृ॰ 185.*
3. *निरालाः 'तुलरूदिास – पृ॰ 12 .*

राष्ट्रीय चेतना की विस्तार सीमा और समय का अपमान न करता हुआ विस्तृत पट भुमि में संस्कृति की गहन गहराईयों में जड़ जमाता है। निराला इसी अर्थ में राष्ट्र कवि हैं। युगीन वस्तु पर घटनाओं का वर्णानात्मक आलेख ही उसका एक मात्र निष्कर्ष नही होगा। निराला की राष्ट्रीयता कभी कभी देशकाल की सीमा में आबद्ध नहीं रही। उनके गीत जैसी भावना को व्यक्त करते है जो किसी भी काल में, किसी भी देश में, किसी भी कवि की होनी चाहिये यदि वह शुद्ध राष्ट्रीयता का कवि है तो''। [1]

आगे चलकर कवि निराला की राष्ट्रीयता एक व्यापक रूप धारण करती है। वह 'जागो जीवन धनिके' में राष्ट्रीयता पूर्ण हृदय से विश्व में बन्धुत्व के भावों की स्थापना करके गा उठता है।

'दो टुक कलेजे करता पछताता पथ पर आता।' [2]

इस प्रकार से जाति समाज और देश से आगे बढ कर निराला की राष्ट्रीयता ने अन्तर्राष्ट्रीयता के साथ कदम मिलाया।

+ + + + +

---

1. *डॉ॰ धजंय वर्मा : निराला और उनका काव्य – पृ॰ : 107*
2. *निराला : गीतिका – पृ॰ : 70.*

आपके द्वारा भेंजी गई *'वितस्ता'* प्राप्त हुई। कार्य बड़ा सराहनीय व स्तरीय है। आपका आलेख 'हिन्दी नाटक में डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल की भूमिका' पढ़ कर बड़ी प्रसन्नता हुई। आलेख बहुत अच्छा व तथ्यात्मक है।

डॉ० मदन लाल
प्राध्यापक
वैरय महाविद्यालय
रोहतक(हरियाणा)

'वितस्ता' शीर्षक आपकी विभागीय पत्रिका प्राप्त हुई। इसका शीर्षक बड़ा ही मधुर है और मुख–पृष्ठ की सज्जा भी मोहक है। यद्यपि इस पत्रिका में कुल छह लेख ही समाविष्ट हो पाऐ हैं, परन्तु ये सभी उच्चकोटि के हैं। मैंने बड़ी अभिरुचि के साथ पूरी पत्रिका पढ़ ली है।

डॉ० श्यामसुन्दर शुक्ल
एम० ए०, पी०एच० डी० ,डी० लिट०
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी।

आपकी विभागीय पत्रिका *'वितस्ता'* का 1998 अंक प्राप्त हुआ। साधुवाद लीजिए कि आप देश के बिल्कुल कोने में बैठकर अपने विभाग से इतनी अच्छी पत्रिका निकाल रही हैं।

मेरी शुभकामनाऐं स्वीकारें।

पुष्पाल सिंह
अध्यक्ष
हिन्दी विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय
पटियाला।

आपके द्वारा कृपापूर्वक भेंजा हुआ *'वितस्ता'* शोध संचयिका 1998 की एक प्रति आज प्राप्त हुई है। हार्दिक धन्यवाद।

इसे एक ही बैठक में अच्छी तरह देख पढ लिया। ऐसा करने में किसी विशेष मेहनत की जरुरत नही बल्कि रचनाऐं इतनी रोचक, प्रवाहपूर्ण, ज्ञानवर्धक और पठनीय हैं कि अनायास इन सबको देख पढ़ लिया। यह एक श्रेष्ठ साहित्यिक–सांस्कृतिक पत्रिका है जो न केवल उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए बल्कि हिन्दी के विद्वानों, प्राध्यापकों, साहित्यकारों और दूसरी तरह सामान्य पाठकों के लिए उपयोगी और शिक्षाप्रद है रचनाऐं और लेखक देश में हिन्दी के किसी भी श्रेष्ठ रचना और रचनाकार से बराबरी कर सकते है। उर्दू के प्रभाव क्षेत्र में रहकर भी ऐसा हिन्दी प्रकाशन निकालना वस्तुतः शाबाशी का काम है। आपके इस आयोजन का प्रभाव देश–विदेश में फैंले इसकी प्रार्थना है।

ओम प्रकाश वर्मा
जमशेदपुर

आपके द्वारा प्रेषित पत्र मिला। बड़ी प्रसन्नता हुई। साथ में विभागीय पत्रिका भी मिली। आपकी सफलता की कामना करता हूँ।

श्री एम.प्रभु
128।सी.सन्तोष नगर कालोनी
हैदराबाद